ماہنامہ

شعاع عمل لکھنؤ

اکتوبر-نومبر ۲۰۱۵ء/محرم نمبر ۱۴۳۷ھ

قَالَ اللّٰہُ تَبَارَکَ وَتَعَالیٰ قَدْ جَاءَکُمْ مِنَ اللّٰہِ نُورٌ وَکِتَابٌ مُبِیْنٌ

بے شک تمہارے پاس اللہ کی طرف سے نور آیا ہے اور روشن کتاب

نورہدایت فاؤنڈیشن، حسینیہ غفرانمآبؒ، چوک، لکھنؤ-۳

R.N.I NO. UPBIL/2004/13526
Postal Regd. No. SSP/LW/NP-75/2014-16 Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month.

AnnualRs.200/- **विशेषांक** Percopy-Rs.40/-

October-November 2015

SHUA-E-AMAL

Lucknow

शुआ-ए-अमल

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ



Gate of Chota Imambara Lucknow



NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION

Imambara Ghufran Maab, Chowk, Lucknow-3 (U.P.) INDIA, Ph.:0522-2252230

Per copy Rs.40/-
Annual 200/-

बिस्मेही तआला

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन की

इस्लामी, ज्ञान व शोध

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

अक्टूबर–नवम्बर 2015 ई०

शुआ-ए-अमल

“लखनऊ”

मुहर्रम नम्बर 1437 हि०

वर्ष 12 — अंक 4-5

न्यास संस्थापन

15 जमादिलऊला 1424 हि० / 16 जुलाई 2003 ई०

पत्रिका विमोचन

15 जमादिलऊला 1425 हि० / जुलाई 2004 ई०

पर्यवेक्षकः
मु० र० आबिद, गोलागंज लखनऊ

संरक्षक

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै. **कल्बे जवाद** नक़वी साहब

अध्यक्ष प्रचार प्रसार

माननीय **नवाब रज़ा** साहब, भोपाल

सम्पादक

सै. मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी ‘असीफ़’ जायसी

उप–सम्पादक

क़ायम महदी नक़वी ‘तज़हीब’ नगरौरी
आसिफ़ अब्बास नौगांवी, इमरान आग़ा, समद अब्बास

मिलने का पता

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

इमामबाड़ा हज़रत ग़ुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक, लखनऊ - 3

Phone No: 0522-2252230   Mobile No: 08736009814 — 09335996808

प्रकाशक मुद्रकः सैय्यद मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी द्वारा स्वामी एस कलबे जवाद नक़वी के लिए निज़ामी प्रेस विक्टोरिया स्ट्रीट अपोज़िट हसनैन मार्केट, चौक, लखनऊ (उ० प्र०) से मुद्रित तथा नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन, इमामबाड़ा ग़ुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक लखनऊ (उ० प्र०) से प्रकाशित।
सम्पादकः सैय्यद मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी

lEiknu lfefr

- ➪ MkW0 vekur gqlSu udoh
- ➪ okfl Q+ vgen udoh ^elj*
- ➪ xkSgj vyh vkt+eh
- ➪ egEen 'kknkc rQ+Tt+qyh
- ➪ etgj gqlSu ^rkt* y[kuoh
- ➪ 'kkfgn vyh vkt+eh
- ➪ bcjkghe vyh d'ehjh
- ➪ vygkt fet+kZ gekÅ;wu dkfnj
- ➪ MkW0 vkfjQ+ vCckl
- ➪ jgku vkye] y[kuÅ
- ➪ fcUrs tgjk ^unny fgUnh*

- ● tQj+ gqlSu fjtoh Ç;wlplQ+ eSDcbZ
- ● bjQku gSnj] Ç;wlplQ+ e/; çns'k
- ● dSQ+ rdh udoh] Ç;wlplQ+ fnYyh

R.N.I. No.
UPBIL/2004/13526



Postal Regd. No.
SSP/LW/NP-75/2008-10



WEBSITE:
www.noorehidayatfoundation.org
www.naqeeblucknow.com

E_mail:
noorehidayat@yahoo.com
noorehidayat@gmail.com

okf"kZd vá'knku

1& ,d lky dsfy, 200/-

2& ikap lky dsfy, 800/-

3& ykbQ+ feEcjf'ki 4000/-

विषय सूची

vDVwcj o uoEcj 2015 bZ0 ¼,d lkFk½
ftygfTtk o egjZe 1437 हि०

djcykdh ?kVuk vkSj insZ dk egRo

vk;rqYykg fgy mTek l¸;nqy mYekek f'k;kuk vyh udh uD+oh

करबला में सत्य व असत्य का युद्ध था। धर्म सहायता का प्रश्न था और इस्लाम के शत्रुओं से टकराव था। कोई सन्देह नहीं कि सत्य का पक्षपात और धर्म की सहायता जिस प्रकार पुरूषों का कर्त्तव्य है, उसी प्रकार महिलाओं का कर्त्तव्य हैं। परन्तु कार्य पद्धति इसकी दोनों के लिए एक समान होनी चाहिए या विभिन्न?

वर्तमान सभ्यता तो स्त्रियों को पर्दे आदि के बन्धन से मुक्त करना चाहती है उसका उत्तर यह होना चाहिए कि कार्य पद्धति दोनों की एक है। जिस प्रकार मर्द सत्य की सहायता के लिए रणक्षेत्र में आता है, उसी प्रकार महिला को भी आना चाहिए। विशेषकर ऐसी अवस्था में जब पुरूषों की संख्या इतनी न हो कि वह अत्याचारी के भौतिक बल का उन्मूलन कर सकें। विशेष कर उस अवस्था में जब पुरूष अपना कार्य पूरा कर सिधार चुके हों और अब महिलाओं के अतिरिक्त कोई शेष न हो, ऐसी दशा में तो पुरूष महिला के मध्य कोई विभाजन रेखा खींचना आसन्न स्थितियों के हिसाब से ठीक हो ही नहीं सकता। परन्तु यह एक सिद्ध सत्यता है और ऐसा यथार्थ है जो नकारा नहीं जा सकता कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने जो अपने समय में इस्लामी मूल्यों के संरक्षण के एक मात्र उत्तरदायी थे करबला की रणभूमि में पर्दे और विशिष्ट महिला संस्कृति व्यवस्था की वो महत्ता सिद्ध की है, जो इससे पहले कल्पना में भी नहीं थी।

एक ओर कम से कम तीस हज़ार की पल्टन और एक ओर अधिक से अधिक डेढ़ सौ के लगभग धर्म योद्धा जिनमें वयोवृद्ध बूढ़े भी और अल्पायु बच्चे भी। परन्तु महिलाएं तलवार द्वारा धर्म युद्ध से इस कठिन बेला में भी मुक्त रखी गयीं। कोई वीरांगना उबैदुल्लाह बिन उमैर की धर्मपत्नी उम्मे वहब सरीखी खैमे की थूनी ले के मैदान में उतर भी आयी तो इमाम ने यही फ़रमा के पलटा दिया कि महिलाओं पर तलवार द्वारा धर्मयुद्ध का आदेश लागू नहीं है।

कोई नहीं कह सकता कि हज़रत ज़ैनब और उम्मे कुलसूम में निर्भीकता और वीरता का जौहर उम्मे वहब से कम था। परन्तु कोई दुर्बल से दुर्बल उनुहार ऐसा नहीं बताती कि इनमें से किसी पुनीत देवी ने इस प्रकार की पहल की हो। क्यों? इसलिए कि महिला के लिए जो इस्लामी व्यवस्था है। वह उनके मन मस्तिष्क में इस प्रकार सुदृढ़ हो चुकी थी कि वे ऐसा करने को सोच भी नहीं सकती थीं। ज़ैनब और उम्मे कुलसूम की क्या चर्चा जो रसूल के घराने की बेटियां थीं, उम्मे लैला, रबाब और क़ासिम की माता सरीख़ी देवियों ने भी जो इस परिवार से मात्र बहू होने का नाता रखती थीं पग आगे नहीं धरे।

इससे कदापि यह नहीं समझना चाहिए कि, ईश्वर की दुहाई, उनके मन में इस्लाम की सहायता का उत्साह न था, अवश्य था, मगर वह यह समझती थीं कि हमारे लिए इस्लामी जीवन व्यवस्था में ऐसा करना जायज़ नहीं।

बड़े विकट अवसर थे वह जब कोई कड़ियल जवान मैदान में युद्धरत है, कोई अल्पायु बच्चा बलिदान के रन में वफ़ा का हक़ अदा कर रहा हैं, कोई प्राण से अधिक प्रिय भाई व्यूहचक्र में फंसा हुआ हो उस समय ममतामयी माँ और हृदय एवं प्राण से न्योछावर होने वाली बहन पर्दे की पाबन्दी के साथ खैमे के अन्दर बैठी रहे। परन्तु यथार्थ यही था।

याद कीजिए वह कठिन अवसर कि जब तमाम प्रिय रिश्तेदार एवं साथी शहीद हो चुके थे, अकेले इमाम शत्रुओं में घिरे हुए थे ज़ख्मों से चूर और आख़िर में घोड़े की पीठ से ज़मीन पर गिरे थे और दुश्मन चारों तरफ़ से घेरे सर को क़लम करने के लिए बढ़ रहे थे, क्या अगर इस वक़्त बनी हाशिम के वंष की औरतें तलवारें लेकर शत्रुओं पर टूट पड़ती और इमाम हुसैन[अ०] को अपने घेरे में ले लेती तो हुसैन[अ०] का सिर आसानी से उतर जाता।

कौन कह सकता है कि उस समय करबला का इतिहास किस सूरत पर लिखा गया होता। मगर ऐसा नहीं किया क्यों

क्या ज़ैनब व उम्मे कुलसूम की रगों और धमनियों में वही रक्त चक्कर नहीं खा रहा था जो अबुल फ़ज़्ल अब्बास बल्कि खुद हुसैन[अ०] की रगों व धमनियों में दौड़ रहा था क्या हज़रत अली[अ०] बिन अबी तालिब[अ०] के शौर्य और साहस में पुत्रियों का कुछ भी भाग न था? कदापि ऐसा नहीं।

परन्तु क्या था? वही प्राण, भाई और सन्तान सबसे अधिक प्रिय इस्लाम के सिद्धान्तों का ध्यान जो ज़ंजीर बनकर इन दुःख पीड़ित और असहाय बीबियों को अन्त तक जकड़े रहा।

सब कुछ हो गया परन्तु वह उसी जगह बैठी रहीं जहां इमाम हुसैन[अ०] उन्हें बिठा गये थे। उस वक़्त तक कि वह जगह यानी खैमें बाक़ी रहे। हाँ जब खैमों में आग के शोले बलन्द थे और ज़ालिमों के हाथ सरों की चादरों को ही जुल्म का निशाना बनाये हुए थे तो नामूस–ए–इस्लाम की खातिर ज़ाहिरी इज़्ज़त व नामूस की कुर्बानी के सवाल को अमली तौर पर हल करने की ज़रूरत थी जिसमें उनके क़दम पीछे नहीं रहे।

अब इस समय उन्हें भाई, बेटों, परिजनों के सभी दाग़ों से बढ़कर दाग़ जो था वह बेपर्दगी का दाग़ था। और जब हृदय की करूणा के प्रकिटीकरण का समय आया तो समस्त विपदाओं में से पूरे जोर शोर के साथ इसी विपदा का व्यक्तीकरण किया गया।

उस अवसर पर जब हज़रत ज़ैनब को दरबार में अभिभाषण की आवश्यकता आसन्न हुई तो यह स्मरणीय शब्द ऐतिहासिक संसार में परदे की महिमा का अनन्तकालीन साक्ष्य बनकर आपकी ज़बान पर आ रहे थे।

इससे स्पष्ट रूप से विदित है कि ज़हरा द्वितीय हज़रत ज़ैनब अपनी सबसे बड़ी विपत्ति इसी बे परदगी होने को समझती थीं। इसी से आपने इसका विशेष रूप से वर्णन किया है।

●●●

---

ckdhi s u0 9 dk---------------

मिलाया जाए तो मतलब साफ होगा कि जनाब सारा को जब यह मालूम हुआ कि यह मेहमान फ़रिश्ते हैं तो बतौर फ़र्याद उन्होंने अपना मुंह पीटा और जब बशारत सुनाई गयी तो ''आप हंस दी'' (सूर–ए–हूद) और अगर यह तस्लीम नहीं किया जाता तो फिर यह तस्लीम करना पड़ेगा कि जनाब सारा ने खुशख़बरी पर अपना मुंह पीटा। कोई साहिब इस मक़ाम पर यह कहकर पीछा नहीं छुड़ा सकते कि यह दीन–ए–इब्राहीमी की बात है। क्योंकि हमारे रसूल–ए–अकरम[स०] को और हमको हुक्म है कि ''इब्राहीम के दीन का इत्तिबाअ़ करो।''

॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

djçjv kusgdlhe

vkSj ekre

ekSykuk lS;n ekgEen 'kkfdj udoh lkgc vejksgoh

एक नई आवाज़ कानों से टकराई कि...

''शीआ मज़हब बहुत अच्छा लगा सबसे अच्छा, लेकिन यह सीना पीटना, मातम करना, यह क्या? अगर कुरआन से इसका जवाज़ साबित कर दिया जाय तो..........''

शुब्हा करने वाले बुजुर्ग की ग़लती नहीं है, कुरआन खुद दावेदार है कि ''ख़िलक़त की कोई खुश्कतर चीज़ ऐसी नहीं जो मुझमें न हो''। मगर कुछ मुसलमानों ने किया यह कि सिर्फ़ कुरआन के काफ़ी ''होने का ऐलान करके काएनात की हर चीज़ का कुरआन से हवाला दे सकने वालों को किनारे कर दिया। ज़ाहिर है कि अब ऐसे जुज़्वी मस्अले कुरआन में किसके हाथ लग पाएंगे। लिहाज़ा एक तीर से दो शिकार हुए एक तरफ़ कुरआन के दावे के आगे सवालिया निशान लग जाएगा दूसरी तरफ़ शरीअ़त की आड़ में मनमानी करने की ताईद हाथ आ जाएगी।

मैं यह बात इसलिए अर्ज़ करता हूँ कि इसी कमज़ोरी का फ़ाएदा उठा के ऐसे सवालों के जवाब का मुतालबा पेश किया जाता है जिनका ज़ाहिर ज़िर्क कुरआन में नज़र न आता हो।

मैं इन जूया–ए–हक़ की क़द्र करता हूँ। जो सिफ़ाते बारी, जब्र, अख़्तियार और विलायत वग़ैरा की पुरपेचवादी तय करके इस मंज़िल पर वारिद हो गये हैं। लेकिन इन सत्रों का राकिम इस हैरत में है कि अगर हमारे करमफ़र्मा पर यह सवाल वारिद कर दिया जाए कि:–

''यह बैठकें जो मुसलमान लगाते हैं कुछ अच्छी नहीं लगती। कुरआन से इन्हें साबित करो तभी हम इस्लाम को सच्चा धर्म मानेंगे।''

तो ज़ाहिर है कि इस का सटीक जवाब कैसे दिया जाएगा। क्योंकि कुरआन मजीद में किसी जगह पर भी नमाज़ पढ़ने के तरीक़े की मुरत्तब और तफ़सीली शक्ल नहीं मिलेगी। ''रूकूअ़'' का ज़िक्र कहीं है ''सज्दे'' का कहीं है। इसके अ़लावा ''सलात'' का मतलब नमाज़ के बजाए दुरूद शरीफ़ भी ले सकते हैं। इसलिए जहाँ हुक्म आया है कि ''नमाज़'' क़ायम करो वहाँ यह भी समझ सकते हैं कि दुरूद भेजो।'' लेकिन अगर ''सलात'' के मानी नमाज़ ही समझें तो 2 रकअ़ती, 3 रकअ़ती, 4 रकअ़ती नमाज़ों जो इस वक़्त मुसलमानों पर वाजिब हैं उनकी तफ़सील कुरआन से साबित करना मुहाल है और कोई कुरआन को काफ़ी या कुछ भी समझें कुरआन ज़ाहिरी तौर पर यह तफ़सील हर कस व नाकस को बताने पर तैयार नहीं है।

बस ऐसे ही समझ लें कि किसी ग़म से असर लेके हुज़्न व मलाल का ज़िक्र तो हो सकता है। कभी बेटे के फ़िराक़ में बाप की रोते–रोते आखें सफ़ेद कर लेने का, किसी पैग़म्बर की सुन्नत के तौर पर तो ज़िक्र करता है, कभी यह बताता है कि कुछ हस्तियाँ ऐसी हैं जिन पर

जिन्नात व फ़रिश्ते तो क्या उनपर आसमान और ज़मीन रोते हैं।

हाँ! यह सवाल अलग है कि रोया कैसे जाए? सोग मनाया कैसे जाए? तो यह सवाल भी वैसा ही है कि जैसे नमाज़ कैसे पढ़ी जाए? एक रकअती कब पढ़ी जाए? तीन रकअती कब पढ़ी जाए। बहरहाल यह तारीख़ की सितमज़रीफ़ी है कि नाना का कलमा पढ़ने वाले नवासे के नौहा मातम का जवाज़ तलाश कर रहे हैं, कुछ लोग तो इसको हराम ठहरा देने की हद तक बढ़ गये हैं। माना जा सकता है कि महज हुज़ूरस0 की सुन्नत या आपकी ''आल'' की सीरत काफ़ी नहीं है तो ऐसे हज़रात के लिए असहाब के अ़मल की पैरवी में तो कोई दिक़्क़त नहीं है। दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर ने अपने भाई का मर्सिया कहने की फ़र्माइश की या नहीं? या शाम के हाकिम यज़ीद बिन सुफ़ियान की मौत पर हज़रत उमर के शदीद रंज वग़म का ज़िक्र तारीख़ों में है या नहीं? अगर तारीख़ ने यह बात गोल कर दी कि इस ग़म व अलम के ज़ाहिर करने में हज़रत उमर ने मातम करने या गरीबान चाक करने ऐसी बातें की या नहीं तो इसमें तआ़ज्जुब की बात क्या है? तारीख़ तो हुज़ूर स0 की वफ़ात पर मदीने में गिरिया व ज़ारी का जो कोहराम बरपा हुआ था उस को भी गोल कर गयी थी। यह राज़ तो बेइरादा तौर पर तारीख़ लिखने वालों ने तब फ़ाश किया जब हज़रत बिलाल के हुज़ूर स0 की वफ़ात के बाद दुबारा मदीने पलट के आने के ज़िक्र में लिखा। कुदरती तौर पर इस इम्कान को नकारा नहीं जा सकता कि जब हज़रत उमर यज़ीद पर रो पीट रहे थे तो बेअख़्तियारी में हाथ सर व सीने पर न गया होगा।

अगर हमारा यह ऐतेक़ाद पक्का है कि पैग़म्बर स0 वहीय की मरज़ी के बग़ैर महज़ अपनी राय से कुछ भी नहीं करते थे तो मानना होगा कि ''हज़रत जाफ़रे तैय्यारकी मौत पर जनाबे फ़ातिमा ज़हरा स0 को रोते देखकर जब फ़र्माया था कि ''जाफ़र ऐसे शहीदों पर रोने वालियों को रोना ही चाहिए।'' तो यह पैग़म्बर स0 ने क़ुरआनी हिदायत की बुनियाद पर ही फ़र्माया होगा। अब अगर यह नतीजा निकाला जाए कि अगर जनाब जाफ़र ऐसे शहीद इस क़ाबिल हैं कि आप पर रोया जाए तो शहीदों के शहीद इमाम हुसैन अ0 सबसे बढ़ के रोए जाने के क़ाबिल हैं।

फिर यह हुज़ूर स0 तक ही महदूद नहीं हज़रत आदम अ0 जनाबे इब्राहीम अ0 जनाबे इस्हाक़ अ0 जनाबे याकूब अ0 जनाबे यूसुफ़ अ0 सबका ऐसे महल पर रोना साबित है।

यहाँ पर यह सवाल उठ सकता है कि हदीसों में इन रोने–धोने की जो मनाही है वह क्या है? तो हम अर्ज़ करते हैं कि यह क़तई मुम्किनात नहीं है बस यह अपने अज़ीज़ों पर अज्र व सवाब के लिए सब्र की तल्क़ीन है, क़ौम पर रोक टोक नहीं। तारीख़ों में आया है कि हज़रत अबुबक्र की रेहलत के दिन मदीने में वैसा ही कोहराम था जैसा हुज़ूर स0 की वफ़ाते हसरत आयात के दिन था।

नावाब और अबीहू कुद्स में बुख़ूर जलाने की वजह से हलाक हो गये तो जनाबे मूसा अ0 को जनाज़ा उठाने का हुक्म हुआ लेकिन जनाबे हारून अ0 और उनके बेटों को हुक्म हुआ कि वह इस मुसीबत पर न शेवन करें, न नौहा करें, न कपड़े फाड़े, न सर बरहना करें। वरना वह भी हलाक हो जाएंगे हाँ! अलबत्ता बनी इसराईल उनका शेवन और मातम करें।

इसके बाद तौरैत की लफ़्ज़ें यह भी हैं कि कोई काहिन अपने किसी अज़ीज़े क़रीब का मातम न करे, न उसकी तज़्हीज़ व तक़्फ़ीन में शामिल हो। बाज़ मोअ़तबर किताबों में यह बात भी पायी गयी है कि जनाबे हारून अ0 के इन्तिक़ाल पर जनाबे मूसा अ0 ने अपना गरीबान चाक किया था और बनी इसराईल ने तीस दिन तक मातम किया।

कहने वाला कह सकता है कि मुसलमान अगर यहूदियों की ही पैरवी पर मुसिर हैं तो फिर

नौहे मातम पर पाबन्दी के साथ तज़हीज़ व तक्फ़ीन भी छोड़ें या फिर ज़ात बिरादरी मातम करे ख़ास अ़ज़ीज़ न करें।

यहाँ पर अगर कुछ उसूली बातें सामने रखी जाएं तो शायद सही नतीजे तक पहुंचा जा सके, पहली बात तो यह है कि क़ुरआने हकीम में क़यामत तक पेश आने वाला सभी कुछ है। हर हलाल व हराम क़ुरआने मजीद में मौजूद है और जिन चीज़ों को खुसूसियत के साथ मम्नूअ़ करार दिया है उनका खुलकर ज़िक्र है। और जिन चीज़ों का अन्जाम देना ज़रूरी है, उनका भी ज़िक्र वाज़िह लफ़्ज़ों में मौजूद है। अलबत्ता जो चीज़ें वक़्त के तक़ाज़ों पर ज़ाएज़ या नाजाएज़ हो जाती हैं उनके लिए क़ुरआन ने वाज़ेह अल्फ़ाज़ इस्तेमाल नहीं किए हैं। कहीं तज़केरे को बिल्कुल मख़्फ़ी कर दिया है। कहीं अच्छाई और बुराई दोनों मवाक़े पर ज़िक्र कर दिया है। मसलन आयते सजदः में ''बुकिय्यन'' कह के बुका को फ़ेले मुस्तहसन क़रार दिया है। ''व तज़हकून वला तब्कून'' का सयाक़ व सबाक़ भी यही बताता है कि ज़िक्रे क़यामत सुनकर रोना चाहिए हंसना नहीं। उसके बाद ''फ़लयज़हकू क़लीलव्व–वलयब्कू कसीरन्'' की आयत अगर मौजूदा तरतीब के लिहाज़ से देखी जाए तो अलबत्ता आयत का अन्दाज़ कुछ नाराज़गी का हामिल है। लेकिन नतीजतन रोने को क़बीह क़रार देते हुए हुक्म नहीं दिया गया है।''

अब सिर्फ़ सीनाज़नी का सुबूत क़ुरआने करीम से रह जाता है जो हमेशा से सफ़बसफ़ हो के की जाती है तो इस ज़ैल में ''वस्साफ़्फ़ाति सफ़्फ़न फ़ज़्ज़ाजिराति ज़ज्रन् फ़त्तालियाति ज़िक्रन् ''किसी के पास इसकी क्या दलील है कि इस आयत में सफ़बन्दी करने वालों में मुराद सिर्फ़ नमाज़ में या जिहाद में सफ़बन्दी करने वाले ही हैं और मातम में सफ़बन्दी करने वाले नहीं और क्या दलील है इस बात की कि– ''फ़ज़्ज़ाजिराति ज़ज्रन'' का क़ुरआनी इमला ''ज़े'' से ही ठीक है ''ज़्वाद'' से नहीं क्योंकि क़ुरआन में इमले के अच्छे करिश्मे हैं। और क्या दलील है कि ''फ़त्तालियाति ज़िक्रन्'' से बस क़ुरआन की तिलावत करने वाले ही मुराद हैं। क्या यह बात मुम्किन नहीं कि क़ुर्आन मजीद के 70 बुतून होने की बिना पर एक मतलब यह भी हो कि क़सम है मातम में सफ़बन्दी करने वालों की, और क़सम है ग़म की वजह से दिल तंग और बेक़रार होने वालों की, और क़सम है (नौहा) पढ़ने वालों की।''

अब अगर यह कहा जाए कि इसमें तो बस सफ़बन्दी है। सीने पर हाथ मारना कहां है तो इस का जवाब यही है कि सफ़बन्दी के साथ जबकि आमतौर पर तर्जुमा करने वाले नमाज़ की सफ़ें मुराद ले रहे हों तो उस वक़्त अगर ''वज़्ज़ारिबाति'' और ''ऐदीहिम्'' और ''सद्रन'' जैसे अल्फ़ाज़ भी आयत में इस्तेमाल कर लिए जाते तो यह सारी की सारी आयतें क़तई तौर पर नमाज़ के लिए मख़्सूस हो जातीं क्योंकि ''वज़्रिब्ना बिख़ुमूरिहिन्न अला जुयूबेहिन्ना'' की रौशनी में यह ले लिए जाते कि ''और सीने पर हाथ बांधने वालें की क़सम'' लिहाज़ा सीने पर मारने का तज़्किरा ही छोड़ दिया गया। अब रही यह बात कि ''वत्तालियाति'' के माना नौहे के कहां से ले लिए गये तो इसका जवाब यह है कि पहली आयत में जब ग़म से दिलतंगी और बेक़रारी का ज़िक्र है तो ग़म और बेक़रारी में किसी ज़िक्र का नाम ही तो नौहा है।

अगर आपको मज़ीद तशफ्फ़ी मतलूब है तो सूरा वज़्ज़ारियाति की 29वीं आयत तिलावत फ़र्माइये।

''जब फ़रिश्तों ने जनाब इब्राहीम को जनाबे इस्हाक़ की बशारत दी तो आपकी ज़ौजा चीखती चिल्लाती आयी और मुंह पीट लिया और फ़र्माने लगीं कि ''मैं तो बांझ औरत हूँ। ''इस आयत को जब बशारत की दूसरी आयतों से

ckdh is ua0 6 ij---------------

हुसैन, इस्लाम और हिन्दुस्तान

महाराज कुमार मोहम्मद अमीर हैदर ख़ाँ साहब महमूदाबाद

हुसैन[अ०] कौन:-

इस्लाम के पैग़म्बर, हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स०] के छोटे नवासे और उन्हीं के दीन धर्म के अपने ज़माने में सबसे बड़े पेशवा, (अग्रणीय) जो इसी दीन की रक्षा करते हुए करबला के वन में अपने परिजनों और वफ़ादार मददगारों समेत दसवीं मोहर्रम सन् 61 हि0 को अत्यन्त निर्दयता के साथ शहीद कर दिये गये। जिनका शोक उस दिन से आज तक संसार के कोने–कोने में मनाया जाता है। मजलिसें होती हैं। आंसुओं की नदी बह निकलती है। अलम, ताज़िये, ताबूत उठाये जाते हैं। सबीलें रखी जाती हैं। मातमदार मातम करते हैं। संक्षेप में यह कि यह ग़म और शोक शताब्दियों से आयोजित होता आ रहा है और दुनिया के सभी देशों में आयोजित होता रहेगा।

इन देशों में भारत भी है जहां विशेष शान, उचित रीति और मनमोहक ढंग से हुसैन[अ०] की ताज़ियादारी की जाती है। जो अपनी आप मिसाल है।

हिन्दुस्तान क्या:-

वर्तमान भारत और पाकिस्तान (अब बंगलादेश भी) का संग्रह जो हज़ारों बरस से पुरानी संस्कृतियों और सभ्यताओं का पालन कर रहा है जिसके आसार, (अवशेष) अब भी बाक़ी हैं। और इमाम हुसैन[अ०] के ज़माने में भी थे। जहां की तलवारें अरब की भाषा में ''मुहन्नद'' और जहां की संख्या और हिसाब के प्रतीकों को ''हिन्दिसा'' कहते हैं। अगरचे यूरोप वाले गणित शास्त्र के इन प्रतीकों को अरबी संख्या कहते हैं।

इस्लाम:-

स्वयं इस्लाम यह बताता है कि खुदा के नज़दीक तो बस एक ही दीन है और वह इस्लाम है। इस्लाम सच्चे विश्वासों में किसी भी अविष्कार या फेर बदल का दावेदार नहीं है। आदम से लेके ख़ातम यानी अन्तिम पैग़म्बर हज़रत मोहम्मद[स०] तक जितने पैग़म्बर दुनिया में आए सबका नज़रिया (दृष्टिकोण) एक ही था यानी 'तौहीद' और 'मआद' अर्थात् एकेश्वरवाद और हिसाब किताब के अन्तिम दिन पर ईमान, अपने पैग़म्बर की गवाही, कथनी की सच्चाई, करनी की अच्छाई, बुरी बातों की मनाही।

यही वह बुनियादी मूल्य हैं जिन्हें बुद्धि भी मानती है, जो किसी धर्म, पैग़म्बरी के दावेदार या किसी ग्रन्थ के ईश्वरकृत होने की कसौटी हैं। इसी कसौटी पर जांचने से पता चल सकता है कि किस धर्म की शिक्षाएं अपने वर्तमान स्वरूप में दुनिया वालों के हाथों विकृत हो चुकी हैं। और कितनी अपने असली रूप में बाक़ी हैं।

प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक जाति और युग के लिए पैग़म्बर भेजे गये जिनकी तादाद एक लाख चौबीस हज़ार कही जाती है। और इन सब ने एक ही धर्म की शिक्षा दी और इसी दीन को ''इस्लाम'' कहते हैं। अत्याचारियों के दीन को

''इस्लाम'' कहते हैं। अत्याचारियों के दीन को इस्लाम या उनकी कार्यपद्धति को इस्लाम के अनुरूप नहीं माना जा सकता है।

हज़रत पैग़म्बर[स०] ने पैग़म्बरी के पद भार से सुसज्जित हो के यानी मबऊस होके बहय यानी ईश्वरीय संकेत का समर्थन पाके हज़रत अली[अ०] द्वारा सहायता के वचन से, खातिर जमा होके दुनिया के सामने ऐसा विधान प्रस्तुत किया कि जिसकी आधारशिला पर आज भी सभ्यता, संस्कृति, विकास और प्रगति की बड़ी बड़ी इमारतें खड़ी हैं।

यह है वह ''इस्लाम'' जिसके लिए हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स०] ने पसीना बहाया। हज़रत अली मुर्तज़ा[अ०] मौत के मुंह पर झपट पड़े या मौत उन पर आ पड़ी और जिसके लिए हुसैन[अ०] बिन अली[अ०] ने जान—माल और औलाद सब कुरबान कर दिया।

इस्लाम किसी देश या किसी वर्ग या किसी युग के साथ बंधा नहीं है। उसकी दावत (उसका आवाहन) मनुष्य जाति के लिए आम है सामान्य रूप से है। उसके नज़दीक काले गोरे, ग़रीब—अमीर, शहज़ादे—फ़क़ीरज़ादे, मज़दूर पूँजीपति, यूरोपी अफ्रीकी, एशियाई किसी में कोई फ़र्क नहीं। इसकी गोद हर आदमी के लिए खुली हुई है और यदि ईमान है तो सबको बराबरी, बिरादरी, स्वतन्त्रता और सम्मान देने के लिए तैयार है। उसकी कुशाग्रता और समग्रता के सामने राजनैतिक सीमाएं ग़ायब हो जाती हैं। भाषा—भूषा का भेद मिट जाता है। वणिक और आर्थिक भेद—भाव लुम्त हो जाते हैं। क्यों न हो! रब—बुल—आलमीन अनेक लोगों के पोषक का बनाया हुआ विधान ऐसा ही होना चाहिए।

''कूलू लाइलाहा इल्लल्लाह तुफ्लेहू'' कहो अल्लाह के सिवा कोई ईश्वर नहीं भलाई पाओगे ''का उद्घोष करने वाला इन्तिज़ार कर रहा है कि जो भी ''लब्बैक'' कहकर? तत्पर्ता सूचक सकारात्मक उत्तर देके उपस्थिति हो जाए उसे अनन्तकालीन मुक्ति और सदाबहार उल्लास की राह पर लगा दिया जाए।

''दीन की पहली मन्ज़िल ईश्वर की पहचान है और पहचान की पराकाष्ठा यह है कि उसकी पुष्टि की जाए। और पुष्टि करने की कुशलता यह है कि उसको एक माना जाए। और एक मानने की पूर्णतया यह है कि उसको परिशुद्ध माना जाए। और परिशुद्ध मानने की पूर्णतया यह है कि उसकी ज़ात या अस्तित्व से अलग गुणों का इन्कार कर दिया जाए।''

इस दर्शन का बयान करने वाला पुकार के कह रहा है कि वेद—उपनिषाद के तत्व ज्ञान की गुत्थियां ''मुश्किलकुशा'' (कठिनाइयां हल करने वाले) यानी हज़रत अली[अ०] के सामने पेश करो, देखो वह दम भर में सुलझाए देते हैं।

इस्लाम ने बराबरी भी सिखाई, बिरादरी भी स्थापित की। गुलामी के अपमान को आज़ादी के सम्मान में भी बदला। लेकिन इसका अर्थ यह न लीजिए कि कोई भेद—भाव का कारण ही नहीं बचा। मतलब यह है कि भेद—भाव धन के कारण ठीक नहीं। कुटुम्ब कबीले के नाते ठीक नहीं। लेकिन विश्वास में शुद्धता, करनी में कथनी से साम्य, हराम चीज़ों से परहेज़, ईश्वर का डर जिसके मन में जितना ज़ाहिर हो उतना ही उसका सम्मान करना इस्लाम का विधान और मुसलमान का कर्तव्य है। ''तुम में सबसे अधिक सम्मानित वह है जो सबसे अधिक संयमी और ईश्वर से डरने वाला है।''

इस्लाम धर्म के अन्दरूनी निज़ाम (आन्तरिक व्यवस्था) के उसूल तो यह थे। अब ज़रा उमूरे ख़ारिजा और ग़ैर क़ौमों के साथ सम्बन्ध विदेश प्रकरण और राष्ट्रों के साथ सम्पर्क के नियम और संहताओं पर निगाह डालिए तो आप देखेंगे कि इस्लाम मुआहिदों को पूरा करने, काफ़िरों को राहे रास्त दिखाने के बाद उनके हाल पर छोड़ देने और मज़हबी आज़ादी का अलमबरदार है यानी इस्लाम क़ौलोकरार को पूरा करने, ईश्वर को न मानने वालों को सीधी राह दिखाने के बाद

उनकी दशा पर छोड़ देने और धार्मिक स्वतनत्रता का ध्वजा वाहक है।

सीरते रसूल[स०] और किरदारे अहलेबैत[अ०] जो कि तालीमाते कुरआनी के आईनादार है, यह पता देते हैं कि मन्शा–ए–तबलीग़, जब्र से कलिमा पढ़वाना कभी न था। यानी हज़रत पैग़म्बर[स०] का चरित्र और उनके पवित्र परिजनों की भूमिका जो कुर्आन की शिक्षा का दर्पण हैं, यह पता देती है कि तबलीग़ अर्थात् इस्लाम के सन्देश के प्रचार का उद्देश्य मजबूर करके कलिमा पढ़वाना नहीं था। कुरआन का इर्शाद है ''दीन में किसी प्रकार की ज़बरदस्ती नहीं क्योंकि हिदायत गुमराही से (अलग) ज़ाहिर हो चुकी तो जिस शख़्स ने झूठे खुदाओं (बुतों) से इन्कार किया और खुदा ही पर ईमान लाया तो उसने वह मज़बूत रस्सी पकड़ ली है जो टूट ही नहीं सकती। और खुदा सब कुछ सुनता है और जानता है।''

सूरा–2 आयत 256

दीन जो अब्द और माबूद के दरमियान राबेत–ए–क़लबी और एक रिश्त–ए–बन्दगी है, जब्र व इकराह से कभी हासिल नहीं होता। यानी धर्म जो उपासक और उपास्य के बीच एक मानस सम्पर्क और एक दास्ता का सूत्र है। ज़ोर–ज़बरदस्ती से कभी नहीं सधता और न उसे ज़बरदस्ती मनवाना सम्भव है। जिसके अक़ायद और विश्वास हमारे अक़ायद से मुख़तलिफ़ हों (विभिन्न हों) उसके सामने सन्मार्ग और कुमार्ग का परस्पर भेद, हिदायत और गुमराही का बाहमी फ़र्क बयान कर देना हमारा फ़र्ज़ (हमारा कर्तव्य) है। फिर उसके बाद वह जाने और उसका काम। जो कोई इस पर इस तबलीग़, इस धर्मोपदेश से मुतआसिसर और प्रभावित हो जाए गोया उसने एक ऐसी मज़बूत रस्सी को खूब अच्छी तरह पकड़ लिया जो कभी टूट नहीं सकती। इस मज़बूत रस्सी को हक़ीक़त की नज़रों (सत्य दृष्टि) से देखिए तो इसके दो सिरे नज़र आएंगे जो एक दूसरे के साथ ऐसी मज़बूती से बट दिए गये हैं कि इनकी बटान कभी खुल नहीं सकती। यह दो सिरे क्या हैं?

पैग़म्बर[स०] की हदीस जवाब देगी। जब तक इस रस्सी के दोनों सिरों यानी ''कुरआन'' व ''रसूल की इतरत'', परिजनों से चिपटे रहोगे उस वक़्त तक तुम लोग कदापि गुमराह (पथ भ्रष्ट) नहीं हो सकते पैग़म्बर[स०] ने यह बातें कह के दिलनशीन करा दी (हृदयांगम करा दी) लेकिन कभी किसी को तलवार के ज़ोर से मुसलमान नहीं बनाया और न ही इसकी इजाज़त और अनुमति दी। और उनके मासूम/दोषरहित जानशीनों (उत्तराधिकारियों) का तरीक़ा भी यही था।

हाँ पैग़म्बर के बाद कुछ मुसलमानों ने ''दीन–धर्म में ज़बरदस्ती नहीं'' के हुक्म इम्तिनाई (निषेधज्ञा) का ध्यान नहीं रखा अरब और अजम के दरमियान भेद–भाव दुनियां संवारने की भवनाएं बराबरी के बजाए तबक़ाती इम्तियाज़ात, वर्ग की विशिष्टताएं बैत–उल–इस्लाम के कोष को कैसर और किसरा के ख़जाने के कोषागार की तरह चलाना, जागीरें बांटना बराबर बटवारे को ताक़ पर रख देना, ज़ोर ज़बरदस्ती, धोखा–धड़ी, दग़ाबाज़ी–जालसाज़ी, हराम को हलाल करना। यानी निषिद्ध को जायज़ कर देना, अनिवार्य को वर्जित कर देना और धर्मविधि को बदल देना करिश्में हैं उस गिरोह के, लीला है उस गुट की जो ज़बान से कलमा पढ़कर इस्लाम के घेरे में पहुंच गया और इक़्तिदार तसल्लुत (राजसत्ता और अधिकार) पाकर अन्दर ही अन्दर इस्लाम की जड़ों को खोखला कर डाला। इनकी मिसाल (इनका उदाहरण) एक पांचवें कालम की ऐसी है जो दोस्त बनकर दुश्मन का काम करता रहता है।

शिम्र, हुरमुला, उमर बिन साद, उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद, यज़ीद और मुआविया इस बेदीन, अधर्मी गुट के कुछ नमूने हैं। जिसके ऐसे हज़ारों बल्कि लाखों हुए हैं। दूसरे वह जो इस्लाम की सच्ची नुमाइन्दगी (सच्चा प्रतिनिधित्व) करने वाले

इमाम हुसैनअ० के साथी हैं जिनके कदम राह–ए–रस्त पर (सत्य पथ पर) इस तरह जमे रहे कि तनों से सर अलग हो गये लेकिन कदम अपनी जगह से न हठे। अल्लाह के इन सदाचारी बन्दों ने अगर कोई ऐसी बात की हो जिससे इस्लाम पर तशद्दुद व खूँरेज़ी का इल्ज़ाम आ सके यानी इस्लाम पर हिंसा और रक्तपात का दोषारोपण हो सके। तो हम मान लेंगे कि इस्लाम में क़त्ल, खून, लूट–पाट और दूसरे का हक़ मारना जायज़ है। लेकिन तशद्दुद करना हिंसा फैलाना कैसे यह मुअज्जज हस्तियाँ खुद ही अपने समय के आतंकवादियों और निरंकुश शासकों के हाथों अत्याचार से पीड़ित हो के दुनिया से उठ गयी।

जज़ीरतुल अरब (अरब महाद्वीप) के बाहर इस्लाम की तबलीग़ या धर्म प्रचार

इस्लाम किसी एक देश या राष्ट्र में सीमित रहने वाला आईन और विधान नहीं। चुनान्चे जब हमारे पैग़म्बरअ० ने ज़ूहूर फ़रमाया यानी अपनी पैग़म्बरी की घोषणा की तो अपने पड़ोसी मुल्कों के शासकों को चिट्ठी लिख के इस्लाम स्वीकार करने का आवाहन किया। इतिहास से पता चलता है कि हब्श, मिस्र, रोम, और ईरान के शासकों को इन पत्रों द्वारा आवाहन किया गया। और इनके दरबारों में दूत भेजे गये जब यह ख़त अपनी जगह पहुंचे तो कुछ दूत कत्ल कर डाले गये। आवाहन पत्रों को असम्मान किया गया। लेकिन इस इश्तिआल, (उत्तेजना पूरक कार्यवाही) के बावजूद हिल्में मुहम्मदी हज़रत मोहम्मदस० की उदारता के माथे पर शिकन भी न पड़ी। व ह एक मुसलहे कुल जो रहमतु–ललिल–आलमीन, लोक परलोक के लिए दया और कृपा बना के भेजा गया था, अज़ाब और यातना का फ़रिश्ता नहीं।

इस क्रम में इतिहास से कहीं इसका पता नहीं चलता कि कोई पत्र हज़रत पैग़म्बरस० की तरफ़ से हिन्दुस्तान भी भेजा गया हो। आख़िर हिन्दुस्तान ने क्या कुसूर किया था। आख़िर हिन्दुस्तान भी तो क़दीम तमद्दुन आदि सभ्यता का पालना था और पैग़म्बरस० सकल संसार को ईश्वरीय संदेश पहुंचाने के लिए भेजे गये थे।

इस अवसर पर फिर से तारीख के पन्ने उलटिये तो पता चलेगा कि हज़रत पैग़म्बरस० की आंखों की ठण्डक आपके नवासे इमामअ० ने स्वयं एक मौके पर हिन्दुस्तान आने की इच्छा प्रकट की थी और यह कोशिश की थी कि अपने पुनीत पितामह की नुमाइन्दगी (प्रतिनिधित्व) इस देश में करने का अवसर मिल जाए। बस इसी फ़िकरे से (इसी वाक्य से) भारतवासियों के गिले का जवाब दिया जा सकता है।

हुसैनअ० हिन्दुस्तान आके अपने नाना की सिफ़ारत का राजनय हक अदा करना चाहते थे।

आपको याद आई इमाम हुसैनअ० की हुर से बातचीत जब हुर ने इमामअ० को कूफ़े जाने से रोका तो आपने उसके सामने क्या–क्या प्रस्ताव रखे।

beke v0: मैं कूफे न जाऊंगा मुझे परिवार समेत इत्मीनान से मदीने लौट जाने दे।

पैग़म्बर के बेटे मैं ऐसा नहीं कर सकता। हुर ने जवाब दिया।

beke v0%अच्छा यमन की तरफ़ चला जाने दे।

आप यमन भी न जाने पाएंगे।

beke v0%अच्छा तो फिर मुझे हिन्दुस्तान या चीन चला जाने दे।

मैं आपकी यह बात मानने से भी मजबूर हूँ। अपने राज्यपाल उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद के कड़े आदेशों से विवश हुर ने जवाब दिया।

हे भारतवासियों! जब इमाम हुसैनअ० के हालात का अध्ययन करते करते इस घटना तक पहुचो तो एक क्षण के लिए थम के इस पर गहरी नज़र डालो। इमाम हुसैनअ० के शब्द, उनके जीवन के ढंग और सत्य के प्रचार की भावना और जन सेवा को सोंचो और समझो तो मालूम

ckdh ist u0 27 ij--------------

gtjr beke gqlSu v0 dh thou dYiuk mudsfo'okl vkSj ftgkn dsifjizs{; esa

izksQslj MkW0 eksgkuk 'kchgqy glu ukgjoh

1& यह शीर्षक वास्तव में स्वयं हज़रत इमाम हुसैन (अ0) की एक सूक्ति से लिया गया है जिसकी चर्चा और अनुहार बहुत से नये और पुराने संदर्भ ग्रन्थों में विद्यमान है, '' जीवन तो बस विशवास और जिहाद का नाम है'' यह जानकारी नहीं है कि इस सूक्ति का प्रसंग क्या है? परन्तु यह सूक्ति निश्चय ही एक ऐसी शाश्वत सच्चाई पर सम्मिलित है जो परिवर्तनीय अवसरों और इतिहास के बदलते रंग–ढंग से कहीं ऊंची है और यही उसकी उच्चतर एवं सार्वभौमिक सत्यता का प्रमाण है। यह सूक्ति मात्र जीवन, विश्वास और जिहाद के परस्पर सम्बन्ध का ही रेखांकन नहीं करती बल्कि अपनी अर्थ सम्बन्धी लपेट के कारण करबला सरीखी दूरगामी घटना और उसके अनन्त आयु सन्देश का शीर्षक बनने की क्षमता भी रखती है। इसलिए कि इसका सम्बन्ध वर्तमान युग की परिस्थितियों से वैसा ही है जैसा कि भूतकाल की परिस्थितियों से था।

2& जीवन और उसके अभिप्राय व सार्थकता व यथार्थ के सम्बन्ध में चिन्तन–मनन का क्रम उतना ही पुराना है जितना स्वयं नियमित रूप से जीवन। परन्तु यह भी ठीक ही है कि हज़ारों–हज़ार वर्ष तक विचारधाराओं ओर चिन्तनों की धूल उड़ाने के पश्चात् भी कष्ट व खोज अभी तक अधकचरे और असफल ही है और जीवन वैसा ही पहेली सरीखा अब भी है कि जैसे था। छोटे–छोटे सिलसिलों और अनुपूरक विचारधाराओं को छोड़ के यदि जीवन के विषय में उपलब्ध ऐतिहासिक स्मरण अभिलेखों को विभिन्न भागों में बांटा जाय तो दो प्रकार के स्पष्ट और परस्पर विरोधी स्कूल उभर कर सामने आयेंगे। एक ''धार्मिक और दैवी'', दूसरा ''भौतिक और धर्म निरपेक्ष''। आज की बात नहीं बल्कि इंसान के स्मरण काल से भी बहुत पहले जीवन की धर्म निरपेक्ष कल्पना विद्यमान थी। लेकिन यह कल्पना जो अस्तित्व–मूल और यथार्थ की दृष्टि से धनात्मक होने के स्थान पर ऋणात्मक है, जीवन के लिए वास्तविक उद्देश्यों के निर्धारण से सदैव असमर्थ रहा है और यदि कभी बुद्धि की व्याकुलता और सामाजिक आवश्यकताओं के कारण इस चिन्तन धारा को कुछ उद्देश्यों के रचने का अवसर मिला भी तो वह किसी अपवाद के बिना क्षणिक, ऋणात्मक और मूल्यों की वास्तविक सच्चाई से सूने रहे हैं। ऊंचे–ऊंचे दअ्वों के होते हुए भी धर्म निरपेक्षता समस्या का वास्तविक सुलझावा कभी सिद्ध नहीं हुई। वह एक प्रकार की टाल मटोल है। उसे कर्बला की घटना को समझने के क्रम में कोई सचमुच की महत्ता देना सिद्धान्ततः सम्भव ही नहीं। अगर धर्म–निरपेक्ष जीवन कल्पना रखने वाले लोग कर्बला की घटना या हज़रत इमाम हुसैन (अ0) के आचरण–शुभ से कोई यश और शक्ति पा लें तो यह अपनी जगह पर सम्भव है। परन्तु इससे धर्म–निरपेक्ष दृष्टिकोण को विशवसनीयता का प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सकता बल्कि दैवी वरदानों और उनसे बेरोक–टोक लाभान्वित होने की छूट की तरह कर्बला की घटना की व्यापक आदर्शवादिता, उच्चकोटि की सार्वभौमिकता और उसके एक सामान्या पौशाला होने की विशेषता अवश्य खुल जाती है। मगर जीवन की यह अविश्वसनीय कल्पना जो अपने विभिन्न रूपों व वर्गो में मौलिक रूप से धर्म निरपेक्षता का सहारा लेते हुए किसी न किसी

प्रकार के विश्वास और उसके लिए किसी न किसी प्रकार के जिहाद की आवशयकता सदैव अनुभव करती रही है।

3& सभी बड़े असत्यवादियों के पास भी कोई न कोई विश्वास था और उसके लिए उन्होंने कभी–कभी तो प्राण को विचलित कर देने वाले युद्ध किये है। जिससे यह प्रमाणित होता है कि धर्म–निरपेक्ष परिकल्पना भी विश्वास और धर्मयुद्ध के बिना नहीं चल सकती, तो जीवन की धार्मिक और ईश्वरीय कल्पना जिसकी स्थापना उच्चकोटि के उद्दश्यों पर है विश्वास एवं जिहाद के बिना क्यों कर पूरी और व्यवहारिक हो सकती है?

4& हज़रत इमाम हुसैन (अ0) की जीवन–कल्पना या जिस जीवन का वह प्रतिनिधित्व कर रहे थे उसकी रूप रेखायें इतनी सुस्पष्ट है कि जिसके प्रवेक्षण और अध्ययन में, देखने में तो कोई कठिनाई नहीं है

ijUrq thou dh ftl ifjdYiuk us,s sv kRel UrkSk vkS ,sh fuMjrk ds lkFk ^^vk kjv** vFkkZ ^^nl oha egjZe **] dsfnu Q ogkfjd vkdkj xzg.k fd;k gks ml lsdkbZl ¶pK Q fDr vl ko/kku ughajg ldrkA उनकी जीवन कल्पना तक पहुंचना इसलिये भी अपेक्षतया सहज है कि यह कल्पना उनकी स्वरचित या निजी और व्यक्तिगत पूंजी न थी। ***;g d\`jvku dh nh gqbZogh dYiuk Fkh ft ldh gt jr iSEcj ¼l0½Q k[;k] Hkk"; djrsjgsA*** उसके विश्वास और उसक लये जिहाद का आकार–प्रकार, इस कल्पना के साथ वास्तविक एवं आदर्श साम्य रखता था। इसलिए हुसैनी जीवन कल्पना के विषय में कुरआन ही से लौ लगाना श्रेष्ठकर ही नहीं अपितु एक मात्र और उपयुक्त कार्य पद्धति होगी। कुरआन ने जीवन और उसकी सार्थकता के विषय में कुल मिला–जुला कर बड़े विस्तार और बड़ी पुनरावृत्ति के साथ मानव जाति को सचेत किया है और '' सोद्दश्येयता एवं ''निरूद्दश्येयता'' के बीच विशाल खाड़ी, और निरूद्दश्येयता के डरावने परिणामों की ओर बार–बार ध्यान दिलाया है। इस चेतावनी का प्रारम्भ सृष्टि के उस विवरण से होता है, जिसका वर्णन कुर्आन मजीद में बहुत आया है।

^^D;k rqus;g le> j[kk gSfd geusvuk;kl gh rqEgkjh lf"V dj nh gS vkS rqe gekjh vkj iyVk;sugha tkvks;s***

इस पावन आयत से न केवल यह स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि और जीवन व्यर्थ नहीं है बल्कि सोद्देश्य है और इस उद्देश्य की पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि परलोक और परमेश्वर की ओर पलटने की कल्पना जीवन के साथ सम्मिलित न हो। निरूद्देश्य एवं सोद्देश्य जीवन का वास्तविक भेद ही यही है कि निरूद्देश्य जीवन में ***bZoj dh vkj iyVusdh dYiuk gh Q FkZ*** हो जाती है और सोद्देश्य जीवन में ईश्वर की ओर पलटना जीवन का परिशिष्ट ही नहीं अपितु जीवन के तत्व में सम्मिलित है– ***^^ijyksd gh vLy thou gS***

यह और इसी प्रकार की बहुत सी आयतें हैं जो सृष्टि और जीवन के अभिप्राय एवं सत्मार्ग का निर्धारण करती है जिनसे अनुमान होता है कि जीवन–मरण ईश्वरीय सृष्टि के दो परस्पर सम्बद्ध अंग है और परलोक की कल्पना इह लोक की कल्पना का वास्तविक उद्देश्य और परिणाम है किसी भी ईश्वरीय सन्देश एवं व्यवस्था में वास्तविक जीवन–मूल्य इसी जुड़वां कल्पना से जन्म लेता है। इस बात पर बल देने आवश्यकता इसलिए उपस्थित नहीं हुई कि इमाम हुसैन (अ0) की जीवन कल्पना और उनके जीवनदायी कदम के प्रत्येक अंश को परलोक की कल्पना से सम्बद्ध करने के पश्चात् ही ठीक परिणाम निकल सकते हैं। करबला के त्रासदी के सभी वृतान्त लेखकों ने इस बात का अनुहार किया है कि ***^^enhus* ls fudyus ds mijkUr ik;% lHkh iMkoksaij vkiuseR;qdks;kn fd;k vkS cjkcj gtjr ^;g;k* iSEcj dh ppkZdjrs*** रहे। मृत्यु की चर्चा न किसी डर के

कारण थी और न किसी आन्तरिक दुविधा के कारण अपितु जीवन कल्पना के द्वितीय और अनिवार्य अंग के स्पष्टीकरण के लिए थी।

5& सृष्टि और जीवन के विषय में क़ुरआनी दृष्टिकोण का एक अविस्तृत रेखाचित्र और प्रारम्भिक रूप रेखायें ऊपर लिखी पंक्तियों से किसी सीमा तक प्रकट होती है। परन्तु विषय और प्रश्न को हज़रत इमाम हुसैन (अ0) के इर्शाद और फिर करबला की घटनाओं से जोड़ने हेतु जिस राजपथ की आवश्यकता है उसके इनारे किनारे और महत्तव पूर्ण मार्गशिला की चर्चा भी आवश्यक है। यद्यपि मानव सृष्टि कोई व्यर्थ कार्य नहीं लेकिन यह स्पष्ट रहना चाहिये कि मनुष्य कोई अलग–थलग अस्तित्व नहीं रखता है। वह ब्रह्मण्डलीय वातावरण में जीवन विताता हैं उसका प्रसंग सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड हैं और वह समाज है जिसकी वह संरचना करता है, जिससे वह प्रभाव ग्रहण भी करता है और जिस पर वह प्रभावी भी होता है। मानव जीवन का कोई उद्देश्य न तो पूर्णता को प्राप्त हो सकता है और न ही फलित हो सकता है यदि संसार की सृष्टि निरूद्देश्य है। समाज बेतुके और बिखरे हुए अंशों का निर्रथक संग्रह है तो उन दोनों के मध्य मनुष्य की सोद्देश्य सृष्टि भी आशाप्रद परिणाम कदापि नहीं उत्पन्न कर सकती। इसी लिये क़ुरआन चिन्तन–मनन का बुलावा देता है और बार–बार यह घोषणा करता है कि ब्रह्माण्ड, धरती और आकाश की सृष्टि भी व्यर्थ और निरर्थक नहीं है–

''हमने आकाश और धरती को और जो कुछ उनके बीच है निर्रथक (और व्यर्थ) नहीं पैदा किया है।''

यहीं से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि अगर आकाश और धरती में असत्य सर उठाये तो उसका मिटा देना न केवल संसार सृष्टि के स्वाभाविक तक़ाज़ों के अनुरूप होगा बल्कि स्वयं मानव सृष्टि की पूर्ति के लिए आवश्यक होगा। ब्रह्माण्ड की सृष्टि तो भूमिका स्वरूप उद्देश्य रखती है। ***ey mnns; rkseuo l f"V l si zkj EHk gks k gSv k\$ i \`k d sx Bus i j i jwk gks k gSA*** इसीलिए ब्रह्माण्ड अपने सारे सौन्दर्य और प्रताप के होते हुए बस एक सृष्टि की हुई वस्तु है। परन्तु मनुष्य को–''अच्छे से अच्छे हाल (और सन्तुलन) के साथ रचा गया है।''

खुली बात है कि इसका तात्पर्य केवल उसकी व्यक्तिगत सजावट, शारीरिक सौन्दर्य या भौतिक बल नहीं है बल्कि उसका सृजन और सृजन की उस उपयुक्ता से भी तात्पर्य होगा जिसके वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और उसके प्रतीकों के साथ उद्देश्यपूर्ण एकता और साम्य बनाये रखने में सक्षम बने। यह बात तब तक असम्भव है जब तक कि ब्रह्माण्ड और मानव के उद्देश्यों का उदय एक ही दिशा से न हुआ हो। इन सामूहिक उद्देश्यों का प्रारम्भिक बिन्दु ''तौहीद (एकेश्वरवाद) के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु नहीं हैं ***mnns; ksa dh vko'; drk ,drk tks cã k.M] O fDr vk\$ lekt dks tksM+us rks gh mn dsv k/kkj ij*** ही सम्भव है। मनुष्य पर इसका उत्तरदायित्व है, विशेषकर इस कारण भी कि इन्द्रलोक में अकेले ईश्वर के प्रतिनिधित्व का पद भार उसे संभालना है ताकि वह अपनी व्यक्तिगत और ब्रह्माण्डीय लय को सदैव ठीक रखे और कुल मिला–जुलाकर ऐसे चलन और शैली का पाबंद रहे जो ब्रह्माण्डीय सन्तुलन को बिगाड़ने का कारण न बने। उसके व्यक्तित्व में क्षमताओं की रंगा–रंगी हैं वह वास्तव में छहों दिशाओं में बटा हुआ है फिर भी उसे अपने आचरण में सच्चे एके या तौहीदी तक़ाज़ों का भरपूर प्रतिनिधि होना चाहिए। आवश्यक मस्लहतों के कारण उसे अनेकता में उलझा दिया गया है। मगर इससे भी महत्तवपूर्ण मस्लहत के आधार पर तौहीदी सूत्र से सम्बद्ध करके उसके प्रतीकात्मक मार्ग अर्थात सिराते मुस्तकीम (सत्मार्ग) पर चलते रहने में उसकी पूरी मदद भी की गयी है।

''क्या हमने मनुष्य को दो आंखें, एक जिह्म और दो अधर नहीं दिये हैं।''

परन्तु साथ ही साथ यह भी कहा है–

***^[kqnk usfd lh Q fDr dsfy;sHkh ml dslhuseanksân; ughacuk;sgSa**

वह अपनी इन्द्रियों के सहयोग से सार्वभौम में यायावर और वाणी पहचानने वाला रहेगा। मगर उद्देश्य की एकता की पूर्ति और उसके बने रहने के लिए उसके पास बोध एवं ज्ञान का केन्द्र एक ही मन और चर्चा एवं अभिव्यक्ति के लिये एक ही जिह्म दी गयी है ताकि वह एकाग्र मन से अपने जीवन उद्देश्यों की पूर्ति में व्यस्त रह सके और जिस प्रकार वह सोचे समझे उसी प्रकार बोल भी सके।

6& इस विस्तार से यह बात और अधिक सपष्टीकरण की मुहताज नहीं रहती कि संसार–सृष्टि और मानव की रचना से सम्बन्धित समस्त व्यवस्थायें एक प्रकार, आकृति या फार्म से सम्बन्धित है।। इसके पश्चात् स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा का दूसरा चरण यह उभरता है कि ***bl oLrqvkS lkFkZrk dh okLrfodrk vkS fLFkfr D;k gS ftldh lEHkkoukvksa dks Q ogkfjd :i nsusdsfy, vkS ekuo ,oa cãk.M dh ltkoV] 'kfDr vkS dk;Zdqkyrk dks c<kok nsus gsrqbruh izy Q oLFkk dhx;h gSA*** इसके लिये मानवीय ब्रह्ममाण्डीय सृजन की आधार शिला एक ही प्रकृति पर रखी गयी जिसके बारे में समस्त विस्तार से आंखें मूंद कर बस इतना कह देना है कि उसके अर्थ,

उद्देश्य और अभिप्राय के स्पष्टीकरण हेतु उसे दैवी प्रकृति ***¼fQrjrqYykg½***का नाम दिया गया है इस प्रकृति से तात्पर्य वह साधारण श्रेणी की प्रकृति नहीं है जो हज़ारों वर्ष से विज्ञान, दर्शन और काव्य के बे लगाम बे रकाब घोड़े की दौड़ का मैदान रही है बल्कि सृष्टि के साथ प्रतिष्ठित होने वाला वह उद्देश्य पालक एवं उद्देश्य–जनक सत् है जो न केवल मनुष्य अपितु पूरे ब्रह्माण्ड को गतिमान बनाये रहता है। इसी कारण फ़ितरत (प्रकृति) का शब्द कुर्आन केवल मनुष्य के लिए नहीं बल्कि सृष्टि–सृजन के विषय में भी बराबर प्रयोग करता है।

''तुम्हारा पालने वाला वहीं है जो आकाशों एवं धरती का पालने वाला है जिन्हें उसने एक विशेष प्रकृति पर ढाला है।''

''कौन हमें (परलोक की तरफ़) पलटायेगा? कह दो वही जिस ने पहले पहल तुम्हें प्रकृति के अनुरूप ढाला। ''

पैगम्बर नूह का कहना है कि–

''हे जाति वालो! मैं तुमसे किसी प्रतिकर का इच्छुक नहीं हूं मेरा प्रतिफल तो उस के ज़िम्मे है जिसने मेरी प्रकृति ढाली है।''

''और मैं उस की उपासना क्यों न करू जिस ने मेरी प्रकृति बनायी है और उसी की ओर तुम सब पलटाय जाओगे।''

इस के अतिरिक्त 'फ़ितरतुल्लाह' की महत्ता इतनी है कि ***^vy Qkfrj** ¼izd`fr dk jpf;rk dsuke lsdqjvku esa,d iwjk lwjk vorfjr fd;k*** गया है। यह और इसी तरह की बहुत सी आयतें फ़ितरतुल्लाह और उसके कार्यक्षेत्र और सृजनात्मक महत्ता की ओर संकेत करती हैं इन आयतों का अभिप्राय यही है कि सृष्टि का मूल आधार एक प्रकृति है और चूंकि वह 'फ़ितरतुल्लाह' है इस लिए ब्रह्ममाण्ड और मनुष्य में अभिप्राय एवं क्रिया की दृष्टि से एक समान कार्यरत है। ***og ,d bdkbZgStks lf"V dk lkj gSA*** उसकी विशेष मांगों और तक़ाज़ों में यह बात सम्मिलित है कि परमेश्वर के अलावा सृष्टिलोक की किसी वस्तु या स्वयं मनुष्य की उपासना नहीं होगी। परलोक के पलटाव की ओर आकर्षण स्वाभाविक है और ***izd`fr dsvkns'kksad svuqdwy u dk ifjrdj ekaxukvizd`frd gSA dsoy 'Qkfrj* vFkkZ izd`fr dk L="Vk gh ml dk ifjrQy ns ldrk gS*** (अगर कोई पैग़म्बर ऊपरी तौर से देखने में कभी कोई प्रतिफल मांगे तो कोई ऐसी ही चीज़ हो सकती है जो प्रकृति का सार हो, तत्व हो) मतलब यह कि प्रकृति का शीर्षक तो तौहीद का विश्वास ही है परन्तु इसमें उपासना,

परलोक की ओर पलटना और दूसरे मूल सिद्धान्त एवं शाखायें सम्मिलित हैं और इसलिए अपनी सामूहिक कल्पना की दृष्टि से जिस प्रकृति को सृष्टि का आन्तरिक अंग बनाया गया है उसकी व्याख्या क़ुरआन ने ''दीने हनीफ़' और ''दीने क़ैयिम'' से की है।

''असत्य से दामन बचाकर अपना मुंह उसकी ओर सीधा करो यह दीन वहीं परमेश्वर की प्रकृति है जिस पर लोगों को पैदा किया गया है। परमेश्वर की सृष्टि में किसी बदलाव का प्रश्न नहीं। यही स्थाई और बना रहने वाला दीन है।''

इस आयत से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि व्यवहारिक दृष्टिकोण से **^^fQ#j r }y lg**]^^nhus guhQ**** और दीने क़ैयिम एक ही अभिप्राय को व्यक्त करने वाली विभिन्न व्याखयायें हैं और जिस प्रकार विस्तार एवं शाखाओं में रंगा–रंगी होते हुये भी प्रकृति का आधार बस ''एक होने'' पर है। उसी प्रकार ''दीने हनीफ़'' और दीने क़ैयिम'' की भी मूल निर्भरता ''तौहीद'' पर है और जिस तरह प्रकृति परलोक की ओर दिशा निर्देश करती है उसी तरह ''दीने क़ैयिम'' का कारवां परलोक के पड़ाव की ओर गतिमान है। प्रकृति को सृष्टि पर वर्चस्व नहीं दिया गया है और उस चीज़ को ''फ़ितरत'' का नाम भी नहीं दिया जा सकता जिसमें वर्चस्व और नाराज़ी का नाम–मात्र भी हो इसीलिए ''प्रकृति'' एक ऐसा क़रार है जिसकी पूर्ति हंसी–ख़ुशी के साथ की जाती है। चूंकि 'प्रकृति' और 'दीने क़ैयिम' एक ही सिक्के के मानो दो पक्ष हैं इसलिए दीन के विश्वास और उनकी पूर्ति के लिए वक़्त पड़ने पर जिहाद भी नाख़ुशी और हिंसा पर लंबित न होगा अपितु प्रकृति के क़रार की पूर्ति होगा। यही दृष्टिकोण मौलिक रूप से ख़ुदा की ओर से दीन पहुंचाने वालों का सदैव से रहा है। यही मौक़िफ़ सदा मोहम्मद (स0) व आले मोहम्मद (स0) ने चुना है और दीन के क़याम अर्थात धर्म स्थापना के क्रम में यही बात विशेषरूप से हज़रत इमाम हुसैन (अ0) के भी दृष्टिगत थी। प्रकृति के इस क़रार जिसे दीने क़ैयिम के क़रार का नाम भी दिया जा सकता है, हमारे इमामों के कथन और हदीसों में बहुत से संकेत मौजूद हैं मगर इसका कोई नमूना मेरे दृष्टिगत नहीं है जो ''ज्ञान द्वार'' प्रकृति के अभिभावक अर्थात हज़रत अली (अ0) के इस कथन–शुभ से श्रेष्ठ और अधिक सर्वांगीण हो जो नहजुल बलाग़ा के दूसरे ही व्याख्यान में मौजूद है। पैग़म्बरों के भेजे जाने की चर्चा करते हुए फरमाते हैं कि ख़ुदा ने लोगों के बीच लगातार पैग़म्बर भेजे–

^^rkfd og izd`fr ds dj#kj dks i;wjk djusdheka djaHkwyk;sgq ojnkuka को याद दिलायें और बुद्धि के ज़मीन में गाड़ दिये गये भण्डारों को खोद निकालें।''

स्पष्ट रूप से यह सारी कड़ियाँ एक श्रृंखला में ऐसी गुथी हुई हैं जो जीवन के वैचारिक और व्यावहारिक पक्ष के संतोष जनक हद तक स्पष्टीकरण के लिए पर्याप्त लगती हैं। इन्हें अगर सामने रखा जाये तो बड़े सहज रूप से समझ में आ सकता है कि **dcZ;k dk ftgkn fdl thou&dYiuk vk;S fdl izd`frd vk;S /kkfeZd dj#kj dh vnkbZFkk vk;S ;g fu.kZ; djus esa Hkh dkbZ dfBukbZu gksxh fd ;tnhn dh vk;q ls ^cSr* vFkkZ bLykeh dsfof/kor~'kkld vk;S izfrfuf/k ds:i esa ekU;rk dh eka] thou vFkkZ ^izd`fr*;vuh ^nhus dS;e* ds dj#kj ds vuq:i FkkA** यअ्नी कुल मिला–जुलाकर विश्वास के अनुरूप था अथवा हज़रत इमाम हुसैन (अ0) की ओर से 'बैअत' न करना फ़ितरतुल्लाह और तौहीद के तक़ाज़ों के पूर्णता अनुरूप था और इसीसे यह अनुमान भी लग सकता है कि हुज़ूर (स0) के स्वर्गवास के पश्चात् सन् 61 हि0 तक इस्लाम के इतिहास या इस्लामी समाज का विकास किस सीमा तक 'दीने फ़ितरत' (प्रकृति–धर्म) के क़रार के अनुरूप था और कितना उसके विरूद्ध?

7& हज़रत इमाम हुसैन (अ0) की

जीवन—कल्पना जो वास्तव में क़ुरआन और इस्लाम के पैग़म्बर (स0) की जीवन कल्पना है, केवल ''जिहाद'', के विशेष ढंग के

आधार पर अद्वितीयता प्राप्त करती है। लेकिन यह अद्वितीयता भी उनकी अपनी व्यक्तिगत नहीं है उसकी संरचना में आपका परिवार शरीक हैं। ''हुसैनी जीवन—कल्पना' सारांश के रूप में सृजन और उसके उद्देश्यों से प्रारम्भ होती है। जिसमें एकेश्वरवाद ओर परलोक की ओर पलटने की कल्पना अनिवार्य रूप से सम्मिलित है। दूसरा क़दम 'फितरतुल्लह' अर्थात 'ईश्वरीय प्रकृति' का बोध है, जो एकता और परलोक की ओर पलटने की कल्पना के बिना निरर्थक है। प्रकृति की सम्भावनाओं और उनके आविर्भाव और उसकी सक्रियताओं को जारी रखने के लिए कुछ विश्वासों का योग आवश्यक है। यह विश्वास विस्तार अवस्था में ऊपर से देखने में अनेक होते हूए भी ''एकेश्वर वाद के विश्वास'' पर

आधारित हैं। **bl h plt +d k uke ^nhus d S;e*** है अर्थात विश्वासों की वस्तुनिष्ठ अभिव्यक्ति हेतु एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता होती जो उनके लिए सर्वोपयुक्त विधा निश्चित करे यअ्नी विश्वासों के लिए एक **(OBJECTIVE CO-RELATIVE)** का होना आवश्यक है। **bl h plt +d k uke ^kjhvr*** है 'धर्म—

विधि' है। **ft l s viusd kjd J`a[kyk ds l eku vk/kkjk i zd `fr dsvuqi gksuk pkfg;sA** इसीलिए इस का नाम **"kjhvrsl gyk*** (सहज—धर्मविधि) रखा गया है। यह सारी व्यवस्था जो आधार भूत जीवन कल्पना से लेकर धर्म—विधि ा के विधायन तक फैली हुई ह व्यक्ति और समाज को बीच में लाये बिना अपूर्ण और अकल्पनीय है। इसलिए कि इस दूर दराज़ श्रृंखला का मौलिक केन्द्र और विषय वस्तु, व्यक्ति और समाज ही है। यही कल्पनायें एक उम्मत (पंथ) की दाग़ बेल डालेंगी जो अगर टेढ़ेपन से बचेगी तो 'ख़ैरे उम्मत' अथवा 'उम्मते वस्त' अर्थात सर्वश्रेष्ठ एवं संतुलित पंथ मानी जायेगी और यही व्यक्ति अगर अपनी प्रकृति की पराकाष्ठा पर बना रहे तो 'नबी' या 'इमाम' होकर पंथ का मार्गदर्शन करेगा और यही सारी श्रृंखला अपनी रंगारंगी, अनेक प्रकार की होने, ऊपरी अनेकता एवं दिशाओं और कर्तव्यों की अनेकानेक दिशाओं के होते हुए भी तौहीद के विश्वास में पिरोई होगी। इस प्रकार जीवन 'सृष्टि' है, 'प्रकृति' है, 'दीने कै़यिम' हैं और 'शरीअते सहला या सहज धर्म विधि' है और अन्तोगत्वा **'l qj{kkRed ft gkn*** है। इसमें से किसी भी कड़ी को तोड़ दिया जाये तो सारी श्रृंखला छिन्न—भिन्न हो जायेगी और अगर इसी बात को संक्षिप्त स्प में कहना हो तो जीवन 'तौहीद का विश्वास' है और इसका मौलिक तक़ाज़ा इस विश्वास की सुरक्षा के लिए 'जिहाद' है। इस प्रकार हम इस शुभ—कथन तक पहुंच जाते हैं जिसे हज़रत इमाम हुसैन (अ0) ने फ़रमाया—

^thou cl fo'okl vkSj ft gkn gSA** इस कथन—शुभ में यह बात ध्यान देने योग्य है कि जीवन को 'विश्वास' कहा गया है 'विश्वासों' नहीं। इसलिए कि यद्यपि विश्वास कई हैं और सबकी महत्ता भी है लेकिन सब विश्वासों का पलटाव एक ही विश्वास की ओर होता है और वह 'तौहीद का विश्वास' है। विस्तार अवस्था में जीवन बहुत फैल जाता है मगर अविस्तार अवस्था और सारभूतता में तौहीद पर लंबित है। **bl fy, ,d s ojokn thou gS vkSj vusd sojokn ej.k gSA**

8& हुसैनी विचार धारा की दृष्टि से जीवन विश्वास और जिहाद है। उनकी जीवन—कल्पना से सम्बन्धित सारे सोच विचार के पश्चात् यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है कि स्वयं उनका विश्वास या विश्वास—संग्रह क्या थे? इस क्रम में किसी विशेष अनुसंधान या लम्बे व्याख्यान की आवश्यकता नहीं है। वह कोई कम जाने—पहचाने व्यक्ति न थे। उनके आचरण एवं भूमिका का कोई भी पक्ष ऐसा न होगा जो इतिहास लेखन में न आ चुका हो, स्वय इस्लाम

के पैग़म्बर ¼l0½ ने इमाम हसन ¼v0½ और इमाम हुसैन ¼v0½ के परिचय के सिलसिले में फुटकर मतभेदों की उपेक्षा करते हुए सर्वमान्य रूप से जो बातें फ़र्माई हैं वह ऐसे व्यक्तियों के लिए कदापि उपयुक्त नहीं मानी जा सकतीं कि जिनका भविष्य और अन्तिम परिणाम ठीक न होने वाला हे। स्वय उनके दार्शनिक कथन, दिग्दर्शक कृतियां और तपस्या एवं उपासना की संलग्नता, आत्मा–सम्मान और धर्म–सम्मान की क्लपना और **vlEefur thou vi{kk llEeku&eR;qdks ojh;rk nsusdk fopkj** और फिर उनके दोष रहित वंशजों की उनके चरित्र के विषय में अनवरत व्याख्यायें और उनके निकटतम लोगों और साथियों की उनके बारे में राय उन के विश्वासों एवं भूमिका पर प्रकाश डालने हेतु पर्याप्त है। उनके बुरे से बुरे शत्रु भी 'यज़ीद की बैअत से इन्कार' के अलावा उनका अन्य कोई 'दोष' रेखांकित नहीं कर सकते, और यह निर्णय मानवीय अंतरात्मा के हवाले है कि उनका यह क़दम **^nkšk* Fkk vFkok mudsmTTtoy thou dk lcls egRriwk dkjukek|** और ''दैवी–प्रसन्नता'' की उपलब्धि की राह में अनवरत प्रयत्न का सफल पराकाष्ठा बिन्दु?

9& हज़रत इमाम हुसैन ¼v0½ के विश्वासों और आचरण में कुरआन और उनके कुल के चलन–अनुसार सब से ऊंचा स्थान और मौलिक महत्ता 'तौहीद' को प्राप्त थी। परन्तु यह नहीं सोचना चाहिये कि उनके यहां जीवन, प्रकृति और 'दीने क़ैयिम' के सिलसिले में द्वितीय और सिद्धान्तों एवं विश्वासों का स्पष्ट हस्तक्षेप न था। दूसरे विश्वासों से उनके संघर्ष के सीधे सम्पर्क की निशानदेही और प्रमाण के लिए रिवायतों और ऐतिहासिक घटनाओं के ढेर प्रस्तुत किये जा सकते हैं। **;|fr ^rk\$hn* mudh gj dkjxqtkjh dh vkRek Fkh ijUrq** दूसरी घटनाओं को उनके आचरण और भूमिका से जो हरयिाली प्राप्त हुयी उसके लिये सुप्रसिद्ध 'ज़ियारते वारिसा' के कुछ टुकड़ों को उद्धत कर देना पर्याप्त है जो संक्षेप के बावजूद प्रत्येक विस्तार अपने भीतर समेटे हुए हैं:–

''मैं गवाही देता हूँ कि आपने नमाज़ स्थापित की, ज़कात अदा की, अच्छी बात का निर्देश किया और बुरी बात से रोका, यहाँ तक कि 'यक़ीन' अर्थात 'मृत्यु' आप तक पहुंच गयी''

यह सभी काम एकेश्वरवाद के विश्वास के बिना अन्जाम नहीं दिये जा सकते इन सभी कामों का सम्बन्ध मृत्यु से स्पष्ट है इसलिए कि अन्त में मृत्यु यअ्नी परलोक में पलटने की चर्चा मौजूद है। यह भी ध्यान में रहना चाहिये कि इस वाक्यांश में एक गवाही और **bLykeh, oau$r d nf"Vdksk lsvlR; xokgh nsuk ;k xokgh dk fNikuk egkiki** है और इसी बिंदु से स्वाभाविक रूप से ध्यान इस बात की ओर भी जाता है इस्लामी जगत और इतिहासकारों के बीच और विशेषरूप से उन लोगों के लिए जो यज़ीद की सफ़ाई देना इस्लाम की बहुत बड़ी सेवा मानते हैं, कोई व्यक्ति ऐसा भी उपलब्ध हो सकता है जो यही गवाही यज़ीद के लिए भी दे सके? रहा स्वयं यज़ीद की जीवन–कल्पना और विश्वासों का प्रश्न, तो उसके दुराचारों के निरन्तर प्रदर्शनों के अतिरिक्त स्वयं उसका अपना काव्य पर्याप्त है जिससे इस्लाम के ऐसे व्यापक और सर्वांगीण धर्म के विषय में उसकी इस्लाम–पूर्व प्रकृति और क़बीलावादी दृष्टीकोण का अनुमान होता है। वह कभी उन्माद की अवस्था में 'बद्र' की लड़ाई में (इस्लामी सेना द्वारा) वध होने वाले अपने पूर्वजों को पुकारता है और गर्व से बताता है कि, उसने हुसैन ¼v0½ की जान लेकर कैसा बदला चुकाया है और कभी कहता है कि, बनी हाशिम ने मुल्क से खिलवाड़ किया, न कभी कोई दैवी–संवाद आया और न कभी कोई 'वहि्य' अवतरित हुई।

10& विश्वासों में हुसैन ¼v0½ की जीवन–कल्पना के सकारात्मक कार्य संचालन के पश्चात आवश्यक है कि इस जीवन कल्पना का प्रभाव उनके जिहाद की सार्थकता और प्रबन्ध

सम्बन्ध युक्तियों पर भी स्पष्ट कर दिया जाये। उनका जिहाद इन सारे व्योरों के मूलतया अनुरुप था जिनकी चर्चा "प्रकृति–सृजन", "दीने क़ैयिम" और विशेषतया तौहीद के सिलसिले में हो चुकी है। उन के जिहाद की मूल स्थापना 'तौहीद' के विश्वास पर है परन्तु उनके जिहाद की एक विशेष पृष्ट भूमि है जिस की थोड़ी चर्चा आवशयक है। यह पृष्ट भूमि अगर बहुत समेटी जाये तो कम से कम उस ipkl lky ij rksvo'; ghQSyh gqvh gS tksgtjr iSxEcj ¼l0½ dsLoxZokl vkSj djcyk dh ?kVuk ds chp eas FkkA वर्ना यथार्थ तो यह है कि इसपस–मंज़र या पृष्ट भूमि में भलाई और बुराई की वह सारी खींचतान शामिल है जिसका प्रारम्भ हज़रत आदम के किस्से से हुआ था। लेकिन इन पचास वर्षों में भी घटनाओं ने जिस प्रकार जल्द–जल्द करवट बदली उसने विकार और परिवर्तन के सभी काल सम्बंधी अनुमानों को रद कर दिया। मानवीय भद्रता की नीव, जिनका कुरआन ने "हमने इंसान को बुज़ुर्गी दी" से उद्घोष किया था, ढह गयी। सृष्टि और धर्म के उद्देश्य विकृत कर दिये गये। "फितरतुल्लाह" पर पूर्ण इस्लाम की प्रकृति को राज करने की सामान्य अनुमति प्रदान कर दी गयी। जाहिली (इस्लाम पूर्व) के उद्देश्यों को नये श्रृंगार के साथ धर्म परायण का पद प्राप्त हो गया। हज़रत पैग़म्बर ¼l0½ के युग का कोई व्यक्ति शायद इस बात की कल्पना भी न कर सकता हो कि /keZ ij jktlh opZo bl izdkj LFkkfir gks tk;sxk vkSj fo'okl ,oa mikluk;sa jkts∗kj eky eas ifjofrZr gks जायेंगी। कुरआन, पैग़म्बर ¼l0½ की सुन्नत और शरीअत का नियमित प्रतिनिधित्व घिनावनी हाथ–बिक्री (बैअ़त) द्वारा यज़ीद के हाथ में भी आ सकता है! इन असाधारण परिवर्तनों और परस्पर विरोधों की व्याख्या इतिहास–दर्शन के साधारण इतिहासकारों के लिए औपचारिक और साधारण बातों की सहायता से शायद ही कभी सम्भव हो सके। कारण और प्रभाव की वह धरा व्यापी श्रृंखला जिस पर अधिकांश इतिहासकारों को संतोष करना होता है शायद ही इतनी बड़ी ध्वस्त कारी घटना की व्याख्या कर सके। इस युग के सारे विकृत परिवर्तन इतिहास–बोध के सामान्य क्षितिज से इतने परे हैं कि उन प्रकट–अप्रकट शक्तियों को पकड़ में लाना साधारण इतिहसकारों के लिए दुष्कर है कि जिन्होंने bLyke ds efrZ Hkkad ;qx ds mijkUr bruk 'kh?kz ;thn lj[kkHk;kog cqx<+Mkyk ftl lsykgk ysus ds ctk; sml ;qx ds vuq vkSj ikLko lEiUu QfDr;ksa us Hkh eLygr vkSj vyx&vYkx jgus ds /keZQoLFkk ij vk/kkfjr vkSPkR; <wa ds gjckj gfFk;kj Mky nsak vkSj ?kj cSBs jguk vf/kd mi;Qr tkukA सम्भव है उनमें ऐसे लोग भी हों जो वैचारिक दृष्टि से शुद्ध विश्वास रखते हों। अगर ऐसा हो तो भी शायद वह जीवन और धर्म की अधूरी कल्पना रखते होंगे इसलिए कि जीवन और धर्म केवल विश्वास का नाम नहीं है बल्कि अन्तरात्मा की उस शक्ति और संकल्प के उस पोढ़ेपन का नाम भी हे जो जिहाद की रणभूमि में मुस्लिम मर्द को बेझिझक उतार दे। हज़रत इमाम हुसैन (अ0) के लिए 'जिहाद' उनकी रचनात्मक जीवन–कल्पना का महानतम स्तम्भ था और उन से इतिहास और धर्म दोनों ही का आग्रह था कि वह यज़ीदी बुत को तोड़कर मूर्तिभजन के नवीन युग का शुभारम्भ करें और एक ऐसी क्रान्ति का शिलान्यास कर दें जो रहते संसार तक उर्वरता की क्षमता रखती हो। उनकी क्रान्ति–कल्पना को समझने के लिए भी प्रत्येक वह व्याख्या अवैध है जो उन के इस यौगिक पंथ और कल्पना से एक रूपता न रखती हो जिसकी इस निबन्ध में चर्चा हुई है। mudsefrZ;kt u dsi'pkr~ Hkh ;thnokn ukk ughagqvk mlh izdkj fd tSls 'kSku u"V ugha gqkA vkt Hkh ;thnokn fdlh u fdlh :i eavfLrRo j[krk gSमगर एक अखण्डित बुत की तरह नहीं। यज़ीदवाद को विकसित

करने वाले व्यक्ति उस के टूटे–फूटे टुकड़ों और बिखरे हुए अंगों से काम चला रहे हैं। इसके ठीक विपरीत हज़रत इमाम हुसैन ¼v0½ को उनके साथियों समेंत टुकड़े–टुकड़े कर दिया गया मगर यह मौलिक रूप में 'तौहीद' का यश है कि हुसैनवाद शुद्ध और अखण्डित रूप में अब भी अपनी भूमिका और सन्देश समेत विद्यमान है और पीड़ित वर्ग को पराजय भावना से बचा रहा है।

11& परिस्थितियों ने हज़रत इमाम हुसैन ¼v0½ के सामने अत्यन्त महत्तपूर्ण मांगें रख दी थीं जिन की पूर्ति आप को उस वक़्त ईश्वरीय उद्देशयों के एकमात्र रक्षक की हैसीयत से और एक आदर्श मानव होने के आधार पर करना ही थी। आपने इस्लाम का जीवन उद्धार किया, धर्म का पुनरूत्थान **(RESURRECTION)** किया, उपेक्षित कर दिये जाने वाले या खोय हुए मूल्यों को पुनः प्राप्त किया और अंहिसा की साहायता से एसे मूल्यों की पूर्नस्थापना की जिनका प्रभाव अमिट बन गया। दीन और राजसी के सर्म्पक को तोड़कर न केवल धर्म को स्वतंत्रता दिलाया बल्कि उसके गुण **^d \$; e** (stature, Perseverance)** को और भी सुदृढ़ता प्रदान की, और सारांश स्वरूप 'फ़ितरतुल्लाह' को, जो अस्तित्व का सार्थक आधार है वाह्रय एवं कृत्रिम दबाव से अपने को सुरक्षित रखने का बल दिया। इस प्रकार ऐसी नई परिस्थितियां सृजित कर दीं जिस में यह प्रकृति न केवल अपने लिए और अच्छी सुरक्षा में समक्ष हो गयी बल्कि अपनी व्यापक संभावनाओं से मानव–भाग्य को माला–माल करने योग्य भी हो गयी और इस प्रकार उनके जिहाद ने मनुष्य को सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता प्रदान की, और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' जैसे मौलिक एवं स्वाभाविक अधिकारों को फिर से प्राप्त कर लिया।

12& हज़रत इमाम हुसैन (अ0) ने जीवन, प्रकृति, विश्वास, जिहाद और दीन में न केवल तौहीद के आधार पर एक संकलनात्मक और रचनात्मक सुन्दरता एवं स्थिति उत्पन्न कर दी थीं बल्कि अपनी श्रेष्ठतम व्यवहार कुशलता, संकल्पदृढ़ता और ईश्वर द्वारा नियत पथ–प्रदर्शक के आदर्श के बल के कारण उन्हें वैकल्पिक परिभाषायें बना दिया था और वह स्वतः अपने दृष्टिकोण और आचरण इन यथार्थों या मूल्यों का विकल्प अथवा दूसरा नाम बन गये थे। यद्यपि वह अपने आप में तौहीद न थे परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि तौहीद की अपरिहार्य शर्तों में से थे। दीन के साथ उन के विचार एवं चिन्तन और कर्म एवं व्यवहार का सम्पर्क इतना भरपूर था कि वह केवल धर्मात्मा होने के बजाये स्वयं धर्म बन गये थे। उन्होंने यज़ीदी बैअ़त नकार के 'लाइलाह' की मंज़िल प्रज्वलित की थी और धन्यवाद प्रकाशन के साथ सज्दे में शहादत स्वीकार करके 'इल् लल्लाह' की मंज़िल सर कर ली थी और इस तरह ला इलाह इल् लल्लाह' का प्राकृतिक क़रार पूरा किया था। उन्हें बलिदान और जीवनदान की राह में सुस्पष्ट और मूलभूत स्थान इसीलिए प्राप्त हुआ कि उन्होंने सभी विश्वासों की आधार शिला अर्थात 'तौहीद'' के कलिमें को इस्लामपूर्व के अनेकेश्वरवादी राजसी अत्याचार के पंजों से छुड़ाया था। चुनानचे इस विचार बिन्दु की ओर एक ब्रह्मज्ञानी का मस्तिष्क पहुंचा तो उसपर आत्म बल द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के प्रकाशमय द्वार खुल गये और सहसा कह पड़ा कि वास्तविकता यह कि, **^ykbykg** dk vkèkkj gqlS ¼v0½ gS*** और जब उसने धर्म के साथ उनकी एकात्मता को अनुभव किया तो इस बात की गवाही दी कि **^gqlS ¼v0½ nhu gS*** और जब उनकी कुर्बानियों की बदौलत यह महसूस कर लिया कि पीड़ित और असहाय दीन की उन्होंने सहायता की और सहारा दिया तो उस ने दूसरे यथार्थ की भी घोषणा कर दी और वह यह कि **^gqlS ¼v0½ nhu ds 'kj.k nkrk gS***। इसी चीज़ को वर्तमान युग के एक दृष्टिधनी और तत्व–ज्ञानी दार्शनिक एवं कवि 'इक़बाल' ने जब महसूस किया तो उनके मन में यह बात आयी कि वह 'ख़ुदी' और 'बेख़ुदी' की बुनियाद पर मानव

भद्रता के जिस दर्शन की रचना करना चाहते हैं और विश्वास एवं व्यवहार जिस धूप–छांव वाले रेशमी वस्त्र से मानव एकता और उस के धर्म एवं संघर्ष की नई भूषा तय्यार करना चाहते हैं वह वैचारिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण से इस्लाम के इतिहास में हुसैन ¼v0½ की काया पर ठीक उतरती है, तो इसका अनिवार्य परिणाम उन पंक्तियों के रूप में प्रकट हुआ जो 'रुमूज़े बेखुदी' में मौजूद है उनके शुद्य विचार की पहचान ये है कि यहाँ भी उन्होंने तौहीद के शीर्षक की पालिया उन्होंने अपनी मसनवी रुमूज़े बेखुदी इस्लामी पंथ के मौलिक स्तम्भों में 'तौहीद' को पहला स्तम्भ ठहराया है। यह वास्तविकता है कि इस्लाम का प्रत्येक जिहाद अल्लाह की राह में था और 'तौहीद' के लिए ही था लेकिन dcZyk dk eSnku vkSj ml dk vlk/kkj.k ftgkn rkSghn ds fo'ks"k dk vej vkSj 'kk'or izrhd cu x;kA इस्लाम के प्रथम स्तम्भ यअ्नी 'तौहीद' की सुरक्षा में हज़रत इमाम हुसैन ¼v0½ ने वह सब कुछ कर डाला जो इस अवसर पर अगर हज़रत पैग़म्बर ¼l0½ मौजूद होते तो आपकी ज़िम्मेदारी होती उस जिहाद और कुर्बानी में वास्तविक भरोसे का कारण सिर्फ़ हुसैनी जिहाद न था अपितु रसूल का उत्तराधिकारी होना भी उसके आयाम ;क्पउमदेपवदेद्ध में सम्मिलित था। इक़बाल इस कुर्बानी के पूरे सिलसिले को समझ गये थे ftl dk vkSpkfjd izkjEHk tukc bczkghe ¼v0½ ds ,d Sojokn ds mn?kkSk vkSj egku cfynku ls gqvk FkkA इसीलिए वह कर्बला की घटना के कर्म में न केवल इस्लामी स्वतंत्रता को देख रहे थे बल्कि मूलभूत विचार धाराओं की एक ऐसी माला का अवलोकन कर रहे थे जिसका गठन बहत्तर रक्तरंजित मनकों ने किया था।

''सत्या के लिए धूल और रक्त से शराबोर हुए है अतः 'लाइलाह' का आधार बन गये हैं।''

''इल्लल्लाह का चिन्ह मैदान पर अंकित किया (अर्थात) हमारी मुक्ति के शीर्षक वाली पंक्ति लिखी।''

''हमारे हृदय के तार उन की वाद्य कारिता से अब भी कंपित हैं और उनके अल्लाहोअकबर कहने की आवाज़ से हमारे ईमान अब भी ताज़ा हैं।''

13& gqSuh dne dk iR;sd Lrj rkSghn }kjk fufeZr lUekxZ ij vfeV fpUg mHkkjrk gqvk vkxs c<+rk jgkA यहां तक कि मन्ज़िल पर पहुँच गया। जब वह करबला के मअ्रिके के लिए स्वदेश छोड़कर निकले तो आचरण की एकता की अभिव्यक्ति हर पग पर हुई। मदीने से निकलना, मक्का त्यागना, फिर किसी संयोग अथवा रास्ता भटकने के कारण नहीं बल्कि समझ–बुझकर कर्बला में उतरना और इस बीच ईमान का अंश बन जाने की क्ष्मता रखने वाले लोगों का स्वागत और छोटी सी पलटन में उन का सम्मिलित किया जाना और उनके उद्देश्यों के परिणामों से परायेपन की प्रकृति रखने वाले लोगों को बहुत अच्छे ढंग से विदा कर देना और साथ रहने या साथ छोड़कर चले जाने की छूट अपने साथियों के लिए अन्तिम समय तक बनाये रहना, जिहाद के लिए तत्पर रहने के बावजूद रक्त पात से बचने का हर सम्भव प्रयास करना, यह और इसी प्रकार की बहुत से बातों का घटित होना संयोग मात्र न था बल्कि एक प्रभावकारी सक्रिय और राह दिखाने वाली आन्तरिक एकता का फल था। इस के विपरीत अगर यज़ीदी क़दम और व्यवस्था एवं उद्देश्यों पर दृष्टिपात किया जाये तो og vius ,sfrgkfld i"V Hkfe vkSj mnns; ijd eru dk ,d vpEHkk fn[kkbZ nsrk gSA ml ds vfLrRo vkSj i"BHkfe esa fo?kVu] ijLij fojks/k] QwV] d\`rk] Qjsc] cny] fonzksg] csoQkbZ] dwjrk] Hk;] fuyZTtrk] /keZ dh cskMeh voekuuk] bLyke dsnksl c ls cMs+ bZ&iRFkj ls cus izrhd ka vFkkZr ^dvck\* vkSj ^jlwy ¼l0½ dh efLtn\* dk fouk'k vkSj rkjkt h ,oa ,d vius ;qx dh lc ls cMh gt jr i\`Ecj ¼l0½ ds gkM&ek ls

cuh ftUnkvyker]¼ tho izhd ½vFkkZr gqlSu fcu vyh ¼v0½ dsvkRek dksrMi+k nsus okys cqr) dks Qsd nsus okys vk;S vUrjkRek dksfodr̀ dj nsus okys dk Ny के अलावा और क्या दिखई देगा? इससे तौहीद के विश्वास से अपने आप में विमुखता और अनेकेश्वरवाद और उसकी सहायक शक्तियों की ग़ुलामी के सिवा और कौन सा नाम दिया जा सकता है?

14& आप की जीवन दृष्टि के व्यवहारिक प्रसार अथवा परिणाम के रूप में जो जिहाद अस्तित्व में आया उस के सूक्ष्म अंशों की उपेक्षा करते हुए अगर उस छोटी सी सेना पर दृष्टि डाली जाये तो उद्देश्यों के बोध और चिंतन की एकता की ऐसी उत्कृष्ट कृति दिखेगी जिस का कोई दूसरा उदाहरण विश्व–इतिहास में उपलब्ध नहीं हो सकता है। हुसैन ¼v0½ की इस पल्टन और उनके उद्देश्यों से एकात्मता अपितु शिनाख़्त ;प्कमदजपपिबंजपवदद्ध अपनी मिसाल आप है। यह पल्टन अपनी यौगिक मनोदशा चिन्तन पद्धति ओर क़दम उठाने की स्थितियों के लिहाज़ से दुनिया की सब से प्रखर ऐसी तौहीदी पल्टन थी जिसमें शिर्के ख़फ़ी (सूक्ष्म अनेकेश्वरवाद) के अंश सूक्ष्मदर्शी–अवलोकन के बावजूद न मिल सकेंगे। तौहीद का विश्वास इन बहत्तर व्यक्तियों के लिए भी जीवन और हृदय धमनी की हैसीयत रखता था। वह गिनती में कम थे परन्तु एकात्मता की दृष्टि से ''तौहीद–पुत्र'' कहे जाने के पात्र थे। उनका जीवन हुसैन ¼v0½ का जीवन था, उनका विश्वास हुसैन ¼v0½ का विश्वास था और उनका जिहाद हुसैन ¼v0½ का जिहाद था। उनके स्वधर्म का नाम हुसैन ¼v0½ था, यह धर्म आज भी विद्यमान है। अपनी सर्वांगीणता और सार्वभौमिकता के साथ–साथ इस धर्म में कोई उच्च स्थान पाने के लिए शर्त यही है कि ''हुसैन ¼v0½ द्वारा प्रतिष्ठित होने वाला'', जीवन और धर्म के विषय में हुसैन ¼v0½ की ऐसी कल्पनायें रखता हो। अपनी सार्वभौमिकता के कारण यह धर्म उन शर्तों को पूर्णरूपेण पूरा न करने वालों के लिए भी लाभान्वित होने का अवसर उपलब्ध कराता है परन्तु इस के लिए यह शर्त तो बहरहाल हो ही गी कि जिसका ज़ियारतों में बराबर वर्णन होता है–

''मेरी उससे संधि है जो आपसे संधि रखता है, मेरा उससे युद्ध है जो आपसे युद्ध रखता है।''

15& हज़रत इमाम हुसैन ¼v0½ के जन्म–शुभ की चौदह सौ वर्षीय यादगार वास्तव में एक ऐसा अवसर है जिसको हमें उन मूल्यों की पुनः प्राप्ति और आधुनिक काल के अनुरूप पुनः सृजन के लिए उपयोग करना है कि इनके लिए हज़रत ने बलिदान किया था। यह सम्मेलन हुसैनीयत के पुर्नभ्यास ;त्मतिमेीमते ब्वनतेमद्ध की हैसीयत रखते हैं जो अनुभूति में चमक और उत्साह में नवीन शक्ति उत्पन्न करने का कारण हो सकते हैं। हज़रत पैग़म्बर ¼l0½ बराबर यह कहते रहे हैं। कि, ***^^;g gqlSu gSabUgsa igpkuks vkSj bu dk cksk izkIr djksA**** इस कथन शुभ का दायरा सामान्य परिचय से कहीं व्यापक है। इसमें सचमुच उस चिर–कालिक बोध की ओर संकेत है ***ftl dsfy, eqLye iFk dksfo'ks"kr;k gqlSu ¼v0½ dh igpku dk mRrjnk;h cuk;k x;k gSA***

●●●

jqckbZ

बिन्ते ज़हरा नक़वी नदल हिन्दी

दुनिया में सईदे अज़ली बन जाओ
ग़म ख़्वारे हुसैन इब्ने अली बन जाओ
शब्बीर के मक़सद की हिफ़ाज़त करके
अन्सारे हुसैन इब्ने अली बन जाओ

●●●

egjZe vkSj beke gqlSu ¼v0½

ekSykuk glu vCckl ^^fQrjr** lkgc

मोहर्रम से मुसलमानों के हिज्री साल की इब्तिदा होती है, यह सब मानते है लेकिन यह भी एक ज़िन्दा हक़ीक़त है कि सन् 61 हि0 वाले मोहर्रम में इस्लाम के वे रूह तन को नयी ज़िन्दगी मिली। करबला के वाक़िए पर ग़ौर किया जाये तो आज के माहौल में उसकी ताबानी (चमक) और बढ़ जाती है। हैरत का मुक़ाम यह नहीं कि रसूल–ए–इस्लाम ¼l0½ की वफ़ात पर पचास साल भी न गुज़रे थे कि हालात ने जाहिलियत का दौर पलटा दिया। इस्लाम और इंसानीयत के आला उसूलों को गर्द व ग़ुबार बना दिया। हिर्स व हवस दुनिया की चाहत और शहवत पसन्दी का ग़लबा हो गया। क्यों कि ऐसा तो होता ही आया है। आज भी हम अपने इर्द–गिर्द का मुशाहदा कर रहे हैं। अलबत्ता मोअ्ज़िज़ः यह है कि लहू की धारों ने कैसे इस गन्दगी के सेलाब को रोक कर उसका रूख़ मोड़ दिया, निफ़ाक का गला घूँट दिया। हक़ व बातिल के दो अलग अलग रास्ते बना दिये कि उनका मिलान अब क़ियामत तक नहीं हो सकता।

मोहर्रम दर अस्ल दुनिया पर दीन की फ़त्ह का एलान है।

इसे इस तरह देखना चाहिये कि दीन में कितनी ताक़त है और इसकी हिमायत के लिये जब कोई बन्दः–ए–सालिह ख़ुलूसे नीयत व बे नफ़्सी के साथ उठ खड़ा होता है तो दुनिया की हर ताक़त यानी ज़ोर ज़र और मक्र व ज़ोर का हर हमला ख़ुद ज़ालिम के गले का फन्दा बन जाता है। हुसैन ¼v0½ ने इस्लाम को ज़िन्दा किया तो इस्लाम ने हुसैन ¼v0½ को, कर्बला को आशूर को, तीन दिन की भूक प्यास, गुर्बत व मज़्लूमीयत को याद रखा और आइन्दा के लिये पयग़मबरे इस्लाम ¼l0½ के बाद के दौरे, इरतिदाद व इल्हाद के तूफ़ान में हुसैन ¼v0½ ही आंधियों में चराग़ की मिसाल बन कर हिम्मत व दिलासा देते रहेंगे और इस्लाम को हयाते ताज़ा मिलती रहेगी। हुसैन और करबला की म़ारिफ़त व शिनाख़्त बढ़ती रहेगी।

हुसैन ¼v0½ की शहदात को उनके खूने नाहक़ को, उनकी मुबरक व बलन्द गर्दन को, उनके तपीदा व फ़राख सीने को, उनके इस्तिक़ामत व सब्र को, उनकी शुजाअत व इबादत उनकी फ़त्हे मोबीन को याद करना हर शख़्स के लिये मोफ़ीद व बाअ़िसे फ़ख़्र है। हुसैन ¼v0½ ने करबला में यह भी बता दिया कि इस्लाम दीने फितरत है, दीने इंसानीयत है। यह बन्दगी, इज्ज़ और इंकिसार का दीन है। यह दर्दमन्दी का ईसार का, दिलावरी का दीन है। यह न रोबाहों, गोस्फ़न्दों गीदड़ों, गदहों कछुवों का दीन है न क़ातिलों, लुटेरों ग़ारत गरों, खूख़ारों का, ये जी हुज़री फिदविदते जो मरंज़ा नरगसीयत व कल्बीयत का दीन भी नहीं है बल्कि यह उस इंसान का दीन है जो अगर अल्लाह के आगे सर झुकाता है तो उसकी मख़्लूक के साथ मोहब्बत करके उस पर मुहरेतस्दीक़ भी लगाता है। यह उसका दीन है जो इज़्ज़ते नफ़्स, शराफ़ते नसबी, बलन्दी–ए–अख़्लाक़ की हिफाज़त करता है उसी के लिये जीता है और उसी के लिये मरता है हुसैन ¼v0½ का क़ौलः–

^^fvTtr dh ekSr ft¥yr dh ftUnxh lscgrj gS** हक़ीक़त में बशरीयत के माथे का झूमर है जिसके बिना सोलह सिंगार भी फीका नज़र आयेगा। मोहर्रम का महीना बड़ी बरकतों और पैग़ामात का हामिल है, इसी तरह हुसैन ¼v0½ भी ज़िन्दगी के हज़ारहा राज़ समेटे हैं। उसकी जनाब में वही दाख़िल होने की हिम्मत

कर सकता जो दीन की ताक़त से आगाह हो, और जो बन्दगी के कैफ़ व कम से आशना हो रस्म व रस्मीयात का गुलाम न हो और इतना तंग दिल भी नहीं कि उसे मेहराब व मिंबर के सिवा कहीं हक़ का जलवा ही नज़र न आये।

l j nkn unkn nLr nj nLrs; tkn

सर दे डाला, मगर यज़ीद के हाथ में, (बैअत का) हाथ न दिया।

^ukrokuh eas rkd#] csl h eas fgEer] अज़ीयत में राहत, ग़म व अलम में लज़्ज़त, यास में आस, मौत में ज़िन्दगी, हार में जीत, एक ऐसा फ़लसफ़ा है जिसे सन 61 हि0 के ख़ूनी म़ारिके को सर करके हुसैन बिन अली ¼v0½ ने हक़ीक़ते जाविदानी में ढाल दिया है। अब करबला आशूर–ए–मोहर्रम, ऐसी ज़िन्दा अलामतें बन गयी है जिन की कोख से अबद–उल–आबाद तक आज़ादी हुर्रीयत, शराफ़त व इंसानीयत की नयी नयी कोपलें फूटती रहेंगी। हक़ व बातिल की वह जंग जो हाबील व क़ाबील से शुरूअ् हुई थी उसका ख़ातिमा हुसैन ¼v0½ व यज़ीद पर होना था चुनांचे अगर यज़ीद ने ज़ुल्म व वरबरीयत की इन्तिहा कर दी तो सब्र व शकेब, ज़बत व इस्तिक़ामत के मनार–ए–नूर को हुसैन ¼v0½ ने आसमान की बलन्दी दे दी। आने वाली सदियों में ज़ुल्म अपने रूप के साथ आता रहा मगर उस्वः–ए–शब्बीर से रौशनी हासिल करने वाले ज़िन्दा ज़मीर व बेदार क़ल्ब वाले अफ़राद कभी उसे ख़ातिर में नहीं लाये और जिस तरह सय्यदा ¼l0½ के लाल का ख़ून मिल्लते इस्लामीया के लिये आबे हयात बन गया था, उसी तरह से राहे वफ़ा के इन मनचलों का लहू नीम खुफ़्ता व नीम बेदार इंसानों को होश मन्द व सैले रवां में बदल दिया करता है।

इमाम हुसैन ¼v0½के सामने दो रास्ते थे, एक तो यह कि नंग–ए–इंसानीयत व ज़िद्दे बशरीयत यज़ीद की हां में हां मिला कर उसके मोसाहिब व वज़ीफ़ा ख़ूर बन जायें, इतना ही नहीं बल्कि मुम्किन था कि उसे अपना ताबेदार व कफ़्श बरदार जैसा बना लें और फ़िर हर मुम्किन अैश व इशरत से आरास्ता व मुज़य्यन ज़िन्दगी में गुम हो जायें और हर ख़ौफ़ व अन्देशे से महफ़ूज़ होकर शब व रोज़ अल्लाह हू अल्लाह हू का विर्द करते रहें। एक तवील उम्र तक वरना फिर ''नहीं'' करके इस ख़ाइन जाबिर हाकिम की तमाम तर शक़ावत व दरिन्दगी के दहने सियाह का लुक़्मा बन जाये। अपने तई हौलनाक व दर्दनाक तरीन मसाएब व आलाम के सुपुर्द कर दें और जो भी गुज़रे उसे झेलने के लिये अज़्म बिल–जज़्म कर लें।''

हुसैन ¼v0½ ने खूब ग़ौर किया, सोचा समझा, बुज़ुर्गों के वसाया व नसायह पर नज़र की और फ़िर आखिरी रास्ते को ही दुरूस्त व पुरसमर जान के अपनाया जान बकफ़न बदोश आगे बढ़े। जो मिला उसे भी अपने रंग में रंग लिया नाक़िस को छांट दिया। अह्ल का इन्तिज़ार किया और मदीने से करबला तक के तूफ़ानी सफ़र में क़ई माह लगा दिया। यहां तक कि बहत्तर की तादाद एक जान व एक तन होकर सामने आ गयी जिसे न हज़ारों का लश्कर डरा सकता न भूक प्यास, ग़ुर्बत व बेचारगी, कमज़ोर कर सकती थी। यही वजह है कि करबला के बहत्तर आज सदियों के बाद भी ज़िन्दा है और हमेशा उनकी याद मिल्लत की कूवत व ताक़त का सरमश्मा बनी रहेगी।

खुलासा यह कि यह ''नहीं'' का मारेका था मैदाने जंग का जीतना मक़सदे हुसैन न था वरना शुजाअते बनी हाशिम के लिये वह भी कुछ मुशिकल बात न थी। इमामे आली मुक़ाम के लिये तनहा जान दे देना बहुत आसान था मगर सिर्फ़ मर जाना उनका मतलूब न था। वह दुश्मन को मर के मारना चाहते थे, इसके लिये एक जमाअत की ज़रूरत थी जिस में से कुछ मारे जायें और कुछ ज़िन्दा रहें और उन ज़ालिमों के हाथ काट डालें जो मक़्सद–ए–शहादते हुसैन पर पर्दा डालने की कोशिश में लगे हों और यह जमाअत मामूली इंसानों की न थी उनमें सब के

सब इश्क़े इलाही की मेअ्राज पर थे। यह फ़ना फ़िल्लाह अफ़राद की ज़माअत थी यह मौत के भूकों का गरोह था और शहादत के प्यासों का जर्गा ऐसे लोग जो सुब्ह से अस्र तक मैदान में जमे रहे ताकि उनकी मौत को इतिफाक़ी हादिसा न बनाया जा सके। न उनके खून से ज़ालिम अपनी आस्तीन व दामन को पाक कर सके, हाँ ! हुसैन ¼v0½ जुल्म के तमाम हथकण्डों से वाफ़िक थें करबला की चटियल रेती पर हुसैन ¼v0½ का खून गिरा। बच्चे, बूढ़े, जवान सब के लहू से ज़मीन लालज़ार बनी मगर दरहक़ीक़त यह सारा खून इस्लाम के नहीफ़ व नाज़ार जिस्म में दाखिल होकर उसे ज़िन्दा व ताबिन्दा बना गया। इस्लाम जिसकी सूरत भी मस्ख़ हो चुकी थी इंसान की अपनी शिनाख़्त की क़सौटी बन गया और निफ़ाक़ के भंवर से उसे हमेशा के लिये रिहाई मिल गयी। हुसैनीयत अब इस्लाम की शिनाख़्त हो गयी है और यज़ीदियत कुफ़्र व निफ़ाक़ की अलामत है।

i\`s u0 34 dk cfd ;k----------

dk pUnz cu x;s vkSj lnk lnk ds fy;s ekuo&eu&efLr"d dks vius 'khry rkiz.ku djrs jgsaA ;tqn tks/kuoku Fkk] eqvf/kjh Fkk] jkT; lsuk] izfrk /ku&/kku okyk Fkk] xqukeh ds va/kdkj esa Mwc dj feV x;kA xkaf/kh gksa ;k VSxksj] jk/kkd".ku gksa ;k 'kjn pUnz lHkh ds fy;s gqlSu dk O;fDrRo iwtk ds ;ksX; gSA esa egkRek xka/kh ds 'kCnksa esa ,d ckj fQj egku gqlSu] lPps gqlSu] vfgalk ds iqtkjh o cU/kqRo ds ekxZn'kZd gqlSu dks J)katfy vfiZr djrh gwWA

^^gqlSu ge Hkkjr&okfl;ksa ds fy, Lora=rk&laxzke ds lsukifr dh rjg gSa esa ds dcZyk ds ghjks dh thouh dk xq+v /;;u fd;k gS vkSj blls eq>dks iwWZ fo'okl gks x;k gS fd Hkkjr dk ;fn dY;k.k gks ldrk gS rks gesa gqlSuh mlwyksa ij pyuk gksxkA**

i\`s u0 13 dk ckfd ;k----------

हो जाएगा कि सचमुच पैग़म्बर[स०] और पैग़म्बर[स०] के घराने वाले न कभी तुमको भूले ओर न तुम को कभी नज़रअन्दाज़ किया गया। इमाम हुसैन[अ०] ने तुमको भी अपने आख़िरी वक़्त में याद किया था और तुम्हारे बीच बसने की इच्छा व्यक्त की थी। विश्वास मानों अगर हुसैन[अ०] यहाँ आने पाते तो तारीख़े आलम (विश्व इतिहास) का धारा मुड़ गया होता।

हरि इच्छा, करबला के शहीद का मनोरथ क्यों कर पूरा कर रही है।

सोगवारो! हुसैन[अ०] तो करबला में तीन दिन के भूखे प्यासे शहीद कर डाले गये। आपकी लाश घोड़ों की टापों से रौंद डाली गयी।

आपका सर भाले की नोक पर दरबदर फिराया गया। लेकिन परमशक्ति को हुसैन[अ०] की बात का बड़ा पास (लिहाज़) है। देखो हुसैन[अ०] तो हिन्दुस्तान तशरीफ़ नहीं लाए मगर उनका ताज़िया हर साल आता है। दुलदुल, पैग़म्बर[स०] के कांधे पर बैठने वाले की सवारी की शान दिखाता है। अब्बास तो फुरात के किनारे शाने कटा के आराम कर रहे हैं। लेकिन आज भी अब्बास[अ०] का अलम नगर–नगर गांव–गांव गश्त करता है।

क़ासिम बिन हसन[अ०] तो जवानी की नींद सो गये लेकिन उनकी मेंहदी अब भी उठायी जाती है। 6 महीने के अली असग़र[अ०] तो हुरमुला के तीर का निशाना हो गये लेकिन उनका गहवारा (उनका पालना) उनके बेज़बान और मज़लूम और पीड़ित होने का मूक प्रचारक है।

हुर के वृतान्त को ध्यान से सुनो और समझो कि हुसैन[अ०] दुश्मन को क्योंकर दोस्त, बना लेते थे। और अपने त्याग भाव और सौजन्य से कैसे मनमोह लिया करते थे।



;kns gqlSu rkehjs fdjnkj dk lj p'ek

eksgrjek jkuk fjtoh

खालिक़े हक़ीक़ी ने दुनिया खल्क़ की–हाल माज़ी में बदलता गया यानी माज़ी के लातादाद नक़्शो–निगार आलमे वजूद में आये और फ़ना हो गये लेकिन यह कैसी सदाये हैं जो आलमे बसीरत के उफ़क़ पर बर्कआमेज़ अंदाज़ में आज तक गूंज रहीं हैं। यह कर्बला के तपते हुये सहरा की बाज़गश्त है जिसके सीने में रसूल अकरम मोहम्मद[स०] के नवासे हुसैन[अ०] का दिल धड़कता है।

हाँ, हम हुसैन ¼v0½ को इसीलिये याद करते है। कि हमारे ज़मीर रौशन रहें, हमारे मिज़ाज आदिलाना सिफ़ात के मरक़ज़ बने रहें, हमारी रूहों में बेदारी और हमआँहगी की हरारत रहे हमारे किरदार में मसावात, इंसानी हमदर्दी और मोहब्बत के शरारे फूटते रहें, और अपने खालिक़े हक़ीक़ी के सामने जब भी सर व सुजूद हों तो ज़बान की नोक से रटे रटाये सबक़ की तरह उसकी नमाज़ न अदा करें, बल्कि रूह की तमाम कैफ़ियाती बलंदियों को समेट कर अपने वुजूद को फरामोश कर दें।

यही है किरदार की वह बलन्दियाँ और मेराज, जो आसमान के लामहदूद वसतों में नहीं, बल्कि करबला के रेगज़ारों में अपनी तजल्ली को बिखेरे हैं। किरदार, जो बनी–ए–नौ–ए–इंसान की फ़लाह और बहबूद के साथ–साथ एक दायमी और पुरनूर हयात का ज़ामिन होता है उसका सरचश्मा हुसैन ही की ज़ात है।

लेकिन हम आज इल्म और तमद्दुन के जिस गहवारे में परवरिश पा रहे हैं उस से हम और हमारे मआशरे को जो कुछ भी मिला है क्या हम उससे वाक़ई मुतमइन हैं ? अपने ज़मीर की रोशनी में मोआयना करने वाला हर दिल एक सर्द आह भर कर रह जायेगा।

हम एक अच्छे डाक्टर बन सकते हैं, एक अच्छे इंजीनियर बन सकते हैं, एक चोटी के वकील बन सकते हैं––बस क्या यही हैं हमारे इल्म की मंज़िल–लेकिन अगर हम किरदार की तमाम बलन्दियों को अपने साथ रखें तो यही डाक्टरी मसीहाई उन्सुर रखती है यही इंजीनियररिंग और टेक्नोलोजी औजे सुरैया तक पहुचने का दम ख़म रखती है यही वकालत हक़–सदाक़त के लिये अपनी ज़बान खोलती है लेकिन हम तो किरदार की बलन्दियों से दूर है–क्यों इल्म और तमद्दुन का वह कौन सा रूप है जिसका तस्ववुर इतना भयानक है– शायद यह है कि इल्म को सिर्फ इस माद्दी दुनिया की खातिर हासिल करते हैं जो फ़ना हो जाने वाली है लेकिन जब इल्म बक़ा के लिये हासिल किया जाता है तो उसके लिये किरदार की ज़रूरत होती है लेकिन हम तो हर आसान काम के आदी हो गये हैं। किरदार निगारी में तो थोड़ी मेहनत करनी पड़ती है ज़फाकशी, दुख और कर्ब के वीरानों से गुज़रना पड़ता है सब्र और इस्तेक़लाल के लामहदूद मरहलों का सामना करना पड़ता है ईसार, वफ़ा, मोहब्बत, इंसानी हमदर्दी, नियत की पाकीज़गी और ग़ैरतो हममियत का लबादा ओढ़ना पड़ता है लेकिन हमारी आदत तो हल्के फुल्के लिबास पहनने की हो गई है। हमारा जिस्म कहां उस बोझ का मुताहम्मिल है जो किरदार का लिबास बर्दाशत कर सके।

हमें अपने जिस्म को मज़बूत बनाना है वह भी सिर्फ जिस्मानी ताक़त से नहीं बल्कि रूहानी ताक़त से भी ताकि अगर हमारा जिस्म छः माह के बच्चे की मानिन्द कमज़ोर भी हो तो अपनी रूहानी ताक़त के ज़ोर से अपने दौर के सबसे बड़े तीरन्दाज़ को भी लरज़ावरन्दाम कर दें, और यही ताक़त हमको अपने किरदार के

तिरयाक़ से हासिल होनी है। ऐसी कैफ़ियात का मुशाहदा निगाहें नहीं कर पातीं लेकिन तारीख ने अपने दामन में ऐसी दास्तानें समेट कर अपने वजूद पर रश्क किया है–तो आइये, हम तारीख की कोख से उस अनमोल गौहर की तलाश करें, जो किरदार साज़ी के अर्श पर एक ऐसे आफ़ताब की मानिन्द चमकता हो जिसकी तजल्ली को देखकर बनी–नौए–आदम की रूह कुछ इस तरह सरगोशी करने लगे :

"इंसान को बेदार तो हो लेने दो,
हर क़ौम पुकारेगी हमारे हैं हुसैन"

यही है वह नाम जिसके किरदार ने एक ऐसी रोशनी अताकी जो दायमी है और जिसके किरदार के आबशार से फूटते हुये उन्सुर ने खुदाई वजूद और उसके लाएह–ए– अमल को जिला बख़्शी।

अगर हम हुसैन इब्ने अली की शख़सीयत और उनकी तारीख़ी पेशक़दमियों पर तफ़क्कुर करते हैं तो हम पाते हैं कि उनकी हर–हर सांस बनी नौ इंसान के लिये हयात बख्श और एक ऐसा हाशिया खीचती है जो हक़ की तजल्लियों और बातिल के अंधेरों को जुदा करती है।

कर्बला की संगलाख वादियों में जिस खून के तूफ़ान का नज़राना हुसैन ¼v0½ने अल्लाह की राह में पेश किया, बनी नौ इंसान का एक ऐसा कारनामा है जिस पर तफ़क्कुर के तमाम मैदान शज़दर और अंगुशबदन्दा नज़र आते हैं।

रसूले अकरम के बाद जब इस्लाम के रूहानी सरापा में माद्दी दुनियां के इमराज़ सराअत कर गये और इसकी नबज़े डूबने लगी तो हुसैन ने एक हाज़िक़ तबीब के मानिंद मर्ज़ को पहचाना और यह महसूस किया कि इस्लाम के सिसकते हुये जिस्म में खून की 72 बोतलों की ज़रूरत है, मैदाने अमल में आये।

नबज़े इस्लाम में दौड़ा दिया खूने ताज़ा
ऐसे होते हैं मोहम्मद के घराने वाले ।

हुसैन बहैसियत एक इन्सान के, जिसके किरदार में वह तमाम चीज़े जमा थीं जो एक इन्साने कामिल के लिये ज़रूरी होती है, उठे तफ्फ़कुर किया माहौल का जायज़ा लिया, मुख्तसर तारीख के पेचो खम पर एक बारीक नज़र डाली, माशरे की बदहाली की वजहों को तलाश किया, इस्लाम के खिरमने अमन में आग लगा देने वाली वो कौन सी कैफ़ियत है, उसका मुआयना किया तो मालूम हुआ क़ौम वही है, लोग वही हैं, दीन वही है, लेकिन इनमें कुव्वते एहसास मर चुका है, जुरंते इज़हार सल्ब हो चुका है और यही दो किरदार, जो हयात का लाहे अमल होते हैं उनको वापस लाना था।

इस किरदार साज़ी की खास वजह सिर्फ़ एक ऐसी राह को हमवार करना था जो दायमी हयात की ज़ामिन हो और उसे अमली जामा पिन्हाने के लिये हुसैन ने कर्बला का रूख किया।

किरदार साज़ी के पहले मरहले पर हुर के प्यासे लशकर को, जो हुसैन[अ0] को गिरफ्तार करके मौत के घाट उतारने आया था, पानी फराहम किया, जो क़त्ल करने आया था उसे ज़िन्दगी बखशी। किरदार की इस मेराज पर कायनात की तमाम हकीमाना और रूहानी बलाग़तें निछावर हैं।

अगले मरहले पर, दुशमन की तरफ़ से फ़ुरात से खेमे हटाये जाने का सवाल उठा, हुसैन ¼v0½ के साथी ज़ुहैर इब्ने कैन बिफ़रे–लेकिन हुसैन ¼v0½ने फ़लसफ–ए–अमन पर एक तारीख़ी जुमला कहा–"मैं जंग में पहल नहीं चाहता"

शबे आशूरा हुसैन ने शमा गुल करके अपने असहाब पर से बैयत उठा कर उन्हें आज़ाद किया लेकिन वह शमा जिससे नूरे इलाही की किरने फूट रही हों उसे छोड़कर उसके परवाने कहाँ जाते, यह है किरदारे हुसैनी का रूहानी विक़ार।

तारीखे करबला गवाह है कि हुसैन अपने ग़ुलाम जौन की आवाज़ पर उसी बेचैनी और र्कब के साथ गए जिस तरह अपने जवान बेटे अली अकबर की आवाज़ पर, यह था मसावात का एक अज़ीम दरस।

'kSk i`s uB 33 ij-----

lR;eo t;rsdkizhd egjZ

tukc egEen glu ^^kkfgn udoh lkgc**

R;kx vkSj cfynku dk ioZ egkjZe lR;eo t;rsdkizhd gS egkjZe fdlh nsk vFkok tkfr fo'ksk dk R;kSgkj ugha gS; g ,d egku ekuoh; ioZ gS tks iSxEcj o"kZ fo'o ds dksus&dksus esa euk;k tkrk gSA

vjc dh rRdkyhu ccZj tkfr;ksa rFkk lEiwkZ ekuo lekt dks lR;] vfgalk] lekurk vkSj U;k; ls ifjfpr djkus ds fy, iSxEcj gtjr egEen lkfgc us bLyke /keZ dh LFkkiuk dh Fkh] okLro esa bLyke ,d vkUnksyu Fkk&tks lekurk] U;k; vkSj lR; ds i{k dks etcwr djus ds fy, rFkk LokFkhZ ekuo lekt esa ekuo vf/kdkjksa dh LFkkiuk djus ds fy, pyk;k x;k FkkA

ijUrq U;k; vkSj lekurk ij vk/kkfjr bLyke mu yksxksa dks jkl u vk;k tks bl ds iwoZ /ku] lEifRr vFkok dqy ds vk/kkj ij viuh&viuh [kqnkbZ cuk, cSBs FksA vr% mUgksaus bLyke dk dM+k fojks/k fd;k&ijUrq gtjr egEen lkgc ds rRiksa y ds vkxs mUgsa ?kqVus Vsdus iMs&vr% mUgksaus nqwjh pky pyh&bLyke /keZ esa ghi fo"V gksdj ml ds fo:) "kM+;a= djrs jgus dk Q Sly k fd;k x;k&rkfd ml dh tM+s de tks j gks h jgs bLyke fojks/kh bUgha 'kfDr;ksa ds dkj.k ^cnz* ^vksgn*] ^vgtkc*] ^gquS*] ^[kSj*] vkSj ^rcwd* vkfn yM+kbZ;k gqbZ vkSj ;gh og 'kfDr;k Fkh&ft Ugksaus yksxksa ds fnyksa esa ^^bLyke ctk;s 'ke'khj QSyku s** dh Hkkouk dks tUe nsdj bLyke dh ikd rLohj ij /kwy tek;h nh&ojuk bLyke dh nqu;k rks rryokjksa dh >ud ij ugha&fnyksa dh /kM+dukssa l sxwt rh gS&;gk;ft Lekso tku ds ugha&nksSr o gnwnwr ds ugha&fnyksa ds lkSns gSa&bLyke og esjkj gS tgk;bUlku dh ij[k gksrh gSA

egkEen lkgs dh eR;q ds i'pkr~ bu 'kfDr;ksa us bLyke ij viuk iwkZ vf/kiR; LFkkfir dj fy;k&vkSj mls ,d rkuk'kkgh lkezkT; esa cnyus dh fo'kky ;kstuk cuk Mkyh&bl sv ey esa ykus ds fy, Qkfl LV rjhds bLreky fd;s tkus yxsA Hk; vkSj vkrad ds lgkjs n§kr&n§kr s bLyke ds eqdkcys ,d 'kfDr 'kkyh lkezkT; mB [kM+k gqvk&;tho bl lkezkT; dk dsUnzfcUnq cuk&bl lkezkT; dk mnn~s; nqfu;k esa vkad QSykdj ;thnh iwoZ ksa dh ml [kqnkbZ dks okil ykuk Fkk] ft l s lekIr djds bLyke us ekuoh; lekurk dh LFkkiuk dh FkhA

;thn vR;kpkj&vU;k;&vlekurk vkSj mRihM+u dk izrhd Fkk] okLro esa ;thn mUgh cqjkbZ;ksa dk lewg Fkk ft Ugsa lekIr djus ds fy, bLyke vfLrRo esa vk;k FkkA vr% tc ;thn us gtjr egEen lkgc ds rRdkyhu mRrjkf/kdkjh gtjr beke gqlSu ls viuh v/khurk Lohdkj djus dks dgk rks gtjr beke gqlSu us lkQ budkj dj fn;kA

nj vLy ;thn vkSj gtjr beke gqlSu nks fojks/kh fl)kUr Fks&;fn dj cyk ds eSnku esa ;s nksuksa fl)kUr fey tkrs rks gd vkSj ckfry esa&vFkkZ lR; vkSj vlR; esa dksbZ vUrj u jg tkrk] ;thn vkSj gtjr beke gqlSu ds chp dh yM+kbZ gd o ckfry ds njfe;ku ,d vtht t ax FkhA

gtjr beke gqlSu dk ;thn dh v/khurk u Lohdkj djus dk eryc lkQ Fkk&nqfu;k dks crkuk fd ^^bUlku gkj us ds fy, ugha vk;k** vkne h dks bl ckr dk ,glkl fnykuk fd ^^et cwj] csjks l keku h vkSj rugkbZ bUlku dks rkdr+ ugha ls dr h&og bu lc ls cM+k gS&vdsyk bulku lkjh nqfu;k dk eqdkcyk dj ldrk gS**

vkSj ;thn ds :i esa lkjh ekuo fojks/kh 'kfDr;k fl eV dj vk x;h Fkh fd ^^nsk! rkSs! bUlku fdruk otu nkj gS&vkf[kj vkt+kdj rks nsk&oDr vkSj vkneh esa dkSu T;+knk rkdroj gS\ ;g ,d [kqyk pSysat Fkk&,d nLrkost+ ,ykus t ax Fkk& bulku vkSj ml dh bulkfu;r ds f[kykQ&

&vkSj ekuorkdsxkSo gtjr gqlSu us pqukSrh Lohdkj dj yh&vkSj dgk ^^nsk uk ! Tkqye dh xnZu ;w ejksM+ wk fd nqu;k gSjr djsxh**

&vkSj b/kj gtjr beke gqlSu us yksxksa dks le>k;k&^^nsks! gekjh rjQ+ ls le> dj vkuk&ge

yšusugh ay{kus tk jgs gSaA

;tqfn lkekftd usrkvksa ¡ tek dh xbZ vkrdoknh QUMksa ;k [krjukd dsemg [kksys x, ncncks cukfy;kA

ge fdlh dks dHkh djusugh tk jgs gSaA ysfdu ge lp gSa vxj rqe gealPpkbZ ls; kj gSrks gekjh rjQ vkvks! ge bulku gSa vxj rqe Hkh bulku gks rks gekjk lkFk nksA**

&vkSj tc inkZ mBk rks bfrgkl dh vkfjkbQVh dh QVh jg x;hA ,d rjQ+ gfFk;kjksa ls ySl &yksus ekjusij rqys yk[kksa dh rknkn esa ;tqfn QkSt ,sFkh rks nwjh rjQ+ gtjr bekes gqlSu dk ,d NksVk lk fugRFkk fxjksg &flQ+ cgrj vkneh ft ue esa enZ Hkh] vkSjrsa Hkh] cPps Hkh] toku Hkh ;gka rd dh 6 eksg dk nw/k ihrk cPpk vyh vlxj+ Hkh rknkn esa 'kkfey& lcdk vTe ,d ^^ cM+h lscM+h eqlhcr sa lg ysa& tku ns nsa& gd+ o bulkQ+ ds jkLrs ls sgVsa ugha& ekuo fojks/kh rkdrksa ds vkxs >qdsa ughaA**

tcs gqlSu vkj mudsibLus,d ,sh vukSf[kh tax dsxokg cus ftlusgd+o cfy dkQSyk dj fn;kA

&uSfrdrki dVsgq lj &esfnku esa dqyh gqbZ yk'kksa tysgq& ywVsgq [kse& lgeh gqbZ vkSjrsa] Mjsgq cPps tax dscknh gqlSu fxjksg dk ;gh tkfgjh fu'kku cpk FkkA ysfdu djcyk dh bl vukSf[kh tax dscknh fQt+k esa gd+ o bulkQ+ dh fgek;r esa ,d ,slh rkdr+oj vkokt+ xwats yxh& ftlsvc dksbZ rkdr [kkeks'k ugha dj ldrh&dksbZ rkuk'kkg vukl qhugha dj ldrhA

gtjr bekes gqlSu vkSj mudsfgek;rh dHkh gkjs x;s& ysfdu bulkfu;r dks g;kr st kos nsx, buds [kwu st yx, ysfdu Hk;kud vR;kpkjsa sjkSkuhdk lkekku dj x, &mudscPpsHkh/kwksl;k s'kghn gks x, &ysfdu Hkh/kwk vkSj I;kl lsrM+rsgq bulkuksa dsfy, <kyl cu x;& gtjr bekes gqlSu usnqfu;k dhdetksj dkSekadks QkflTe dkeqdkcyk djusdk ,d u;k jkLrk fn[kk;kA xqykehkavkS cls gkjksadks,d u;h rkdr nhvkSj crk;k fd ^^bTtr dhekSr ft Yyr dhftUnxh lscgrj gSA** gtjr bekes gqlSu djcyk ds,srgkfld esnku esa

ekuo vf/kdkjksadsfy, yM+Fks& mudh djcykuhflQZ bLyke dsfy, ughaa lkjs ekuo lekt dsfy, FkhA

djcyk dk ;g ,frgkfld cfynku fgtjh lu~ 61 dsekgjZe ukedegh use sgqvk FkkA& vr% iSxEcj o"kZ ekgjZe dsegh use sgqlSu hijpe vye vkSj gtjr bekes gqlSu dhlek/k dsizrhd ^rkft;k* dstqywl fudky dj rFkk etfyl ksa dk vk;kstu dj d&ml esa gtjr bekes gqlSu dsegku cfynku dsegRo ij lkfgR; i<+dj &ml vtke dqckZuh dh ;kn rktk dh tkrh gSa& tksVksa sgq fny ksadsfy, ,d <kjl & detksjkss dh kfskadsfy, ,d vthc c xjhc rkdr+ vkSj cts eqZo cSkrk dqys tk jgs bulkuksa dsfy, bRrgkn vkSj gkSy sdk i Sxke gSA

ekgjZe dstqywl esa cyUn gksrs okyh ^;k gqlSu !;k gqlSu !** dh vkokt &gj txg vkSj gj nkSj ds vR;kpkj& vU;k; vlekurk vkSj mRihM+u dsf[kykQ ,d rkdr &oj vkokt+ gS& ekgjZe fcuk jax o uLy et gc o feYyr dsHksn Hkko dsnqfu;k dsgj le; dsgj eqYd dsmu rekel bulkuksadsgd+e sa vkokt+ cyUn djrk gS& tks vHkhrd nkSj dsvR;kpkj dsuhps fil jgsgSa& tks vHkhrd bulku fojks/kh rkdrksads f'kdats esa tdM+sgq gSa& vkSj tks vHkhrd bulkuh gqdwd+ lsegu:e gSaA

ekgjZe mu rkdrksa dsf[kykQ tuer r;kj djrk gS tks nkSjr] gqdwr ;k vU; fdlh rkdr dk lgkjk ysdj xjhcksa cs gkjksa det ksjksa vkSj et cwjksa dks nckrh gS rFkk mudsbulkuh gqdwd dslkFk f[kyokM+ djrh gSA

tekuk djoVsa ys rk jgk&gqdwers a curh fcxM+h jgh& ;tku vc rd uk tkusfdrusudke & uk tkus fdrusp gjsvk+pdk& ysfdu gqlSu ;r vkt Hkh ogh gS& tks vkt lspkSg lkSl ky igysFkh& vkSj ge'kk ogh jgsxh&D;ksad gqlSu uke gS& bulkfu;r dk gqlSu uke gS vkneh dh vneh;r dk vkSj MkW bdcky ds'kCnksa esa& gqlSu uke gS ml gdhdr dk tks

^^gdhdr& ,&vcnh gS ed ke&, &'kCcchjh]
cnyrs jgrs gSa vUnkt & ,&dQh o 'kkeh**

;kns gq¢ fdj+nkj&lkt+h

tukc lS fjtoku gSnj lkgc

vkt nqfu;k ,d ,slh eqthcr esa eqfCryk g¢ dscetkfgj nqfu;krjDdh+dhjkg ij xkeTku g¢ exj ykxksadsfdjnkj iLrhdhflEr c<+jgsgSa bldhotg pkgsgekjh cndkj Leadership gks pkgsgekjk ek¢Snwk rkyhehfutke A bl eqthcr dsoDr eatcfd fdjnkj iLr gksjgsgSa bl ckr dh'knn t+:jr gSfd ,slsykxksadh ;kn rktk+ dh tk, tksfd fdjnkj ds uqdw&,&m:t ij gksa tc nqfu;kusrkjhdh+ dksiyVk rksml scgqr lh gfLr;k¡ fn[kbZ nha dksZ'kq[kwr dk eqEey iSdj Fkk] dksZv fgaÏkdkiqrykFkk] dksZl czdh vtheefUtyrksa ij Qk; t+Fkk] dksZrdOsds dk eqEey eqLlekdksZbZ'kj dh tkrh&tkxrhrLohj Fkk] exj dksZu feyk dh ftlesa;g reke flQkra vius uqdw&,&m:t ij ek¢Snw gksa

rkjh[k+dks[kaky dj n¢[kk fy;krksflQZgq¢Su vk¢j cl gq¢Su dhghtkr feyhfd ftlesa fdjnkj dhreke flQkra viusuqdw&,&m:t ij Fkha vk¢j ;g reke flQkra ,d&,d djdseSaleusdjcyk esaueqk;kgqbZ

tSlk fdjnkj gksuk pkfg, gh ueqkbLnxh gksuh vk¢j oSlh gh fdjnkj lkt+h gksuhA fdjnkj dk vlj dSsk gksrk g¢;g n¢[kuk gksrksvius teukusadksdjcyk yspfy,] ,d rjQ Hkk[kk&I;kl s 72 Fk¢ rksnwljhrjQ lSsk&lk¢kc yk[kksa ,d rjQ uekt+ aFka rksnwljhrjQ 'kjkcaA ,d rjQ eqYysl t jgsFk¢ rksnwljhrjQ ?kqM+ksadh tkusA ,d rjQ rdchjksadh vkokt+Fkh] rks nwljhrjQ gfFk;kjksadh >ud kjA ,d rjQ uS+ij dj+vku i<+sokysFk¢ rksnwljhrjQ uS+ij dj+ku j[kusokysA ,d rjQ tt+¶ 'kgknr Fkk] rksnwljh rjQ tkxhjksa vk¢j bukekadhykypA ,d rjQ gd+ij fQnk gksusdhgkSM+Fkh] nwljhrjQ ;thn dslkeusÅpk gksusdhpkgA ,d rjQ gq¢Shl czFkk] rksnwljhrjQ ;thnhTkqeA ,d rjQ nheu dksHkh ikuhfiykusdk lcd+Fkk] rksnwljhrjQ tgka tkrusdsfy, ikuhcUn djusdh rnchj A ,d rjQ mldksekQ djusdh fgEer FkhtksfdI ?kj dj djcykykk;kFkk] rksnwljh rjQ N%eghusdscPpsij Hkhrhj pykusdhxq¡rk[khA

;g gSueqkbUnxh dk vlj] fd eqkgkrfyQ+ flu okys] eqkgkrfyQ+jax okys] eqkgkrfyQ+ulc okys] eqkgkrfyQ et+gc okys,d gksdj gq¢Shfe'ku dsfy, viuklc dN dqjcku dj nsssgSa

^^gq¢S bCusvyhusfQ+jrasJcnyhgSa,d 'kc esa cq+hgS'kEesavk¢j egfQ+ylsijokusugha tkrsA**

rksnqfu;kusn¢[kkfd fdjnkj&lkt+h dsfy;s gq¢S lsc<+dj dksZnwljhfelky ugha vkt t+:jr bl ckr dhgSfd ;knsgq¢S euk¢Zt k;svk¢j dN bl rjg lseuk;htk;sfd fdjnkjsgq¢S dhfdjuasgekjh :gesa lekt k;sA

vkt ge n¢[krsgSafd eqYd vkil esaikuh dscVokjsdsfy, yM+jgsg¢ eqYd rkscgqr nwj dh pht+,d gheqYd dslwcsikuhdsfy, vkil esayM+ jgsg¢ lwcsrkscgqr nwj dh pht+iM+kslhvkil esa ikuhdsfy, yM+jgsgSa oghdjcyk esagq¢S vius tkuhnqeuksadk¢ tksmUgsa?kj dj djcykystkjgs g¢ og ikuhfiykjgsgSa tkslgjk dhrirh/kwi esa cPpksadsfy, tekfd;kx;kFkk vk¢j ;g fn[kkjgs gSafd ikuhfdlhdhfeyfd;r ugha mlij lc dk cjkcj lsgd+gSa vxj fdjnkjsgq¢Shij vey gks jgkgksrkrksde lsde ikuhij vkil esayM+kb;k¡ u gksrhA

fdjnkjsgq¢S og vtheleUnj gStks 7 feuV rkscgqr nwj] 7 lkSlky dhequyly rdj+hj dh xxjhesaHkh ughalekldrkA vkt t+:jr bl ckr dh gSdsgq¢S lsckekjQ+ egQ¢r dhtk;] D;kfd ftl 'kSlsegCcr gksthgSml dh;kn ckj&ckj vkrhgSa tc gq¢S dh;kn ckj&ckj vk;sxh rksmudsfdjnkj ds uD'+kgekjst¢ukasij Nktk;saxavk¢j mudk fdjnkj gekjsfy, uew&,&vey cu tk;xkA cdkSy ^^tkSk** efygkcknhds&

^^nqeuksa dh l;kg cqujokv ksrksyksuke gq;sA
eksS dh Nkrh ik p<+ tkvks] rksyksuke gq;sA
nkbr nkjs nqeuk;gksyks] rksyksuke gq;sA
rx+ dsuhps Hkh lp cksyks] rksyksuke gq;sA
Tkkye dh rkeh dks <k nks] rksyksuke gq;sA
'kEek lsvkokt dkspdjk nks] rksyksuke gq;sA
gkaij[k yks[ku fgEer dks] rksyksuke gq;sA
tku yksviuh 'kjhQ+ dks] rksyksuke gq;sA**

nqeuksa dsl kFk dSl k lyqd fd;k tkrk gS;g gq;s lsl h[kkA xqykeksa vkSj duht+ksa dsl kFk dSl si sk vk;k tkrk gS;g gq;s lsl h[kkA jkgsgd+ dsfy, viuk lc dqN dqcku dj nsuk gS;g gq;s ls l h[kkA ;rhekas vkSj cso kvksa dsflj ij dSl sgkFk j[kk tkrk gS;g gq;s lsl h[kkA gj cM+s lscM+s eqlhcr dk dSl sgl dsl keuk fd;k tkrk gS;g gq;s lsl h[kkA viusxkes dsi ky keks dks l;kg eafcy [krkn§kdj Hkh dSls l czfd;k tkrk gS;g gq;s lsl h[kkA lc dqN fuNkoj djdseft Zsbyksgh tkuuk] ;g gq;s lsl h[kkA nqeuksa dh b'kfr;ky vaxst+gj drkksa dsckotw Hkh tax esai gy u djuk] ;g gq;s lsl h[kkA Tkkye u djusvkSj Tkkye u lgusdh vknr Mkyuk] ;g gq;s lsl h[kkA cM+s ls cM+s bErgku esa Hkh gd+ dksu NksM+uk] ;g gq;s ls l h[kkA ;knsgq;s D;ksa t+ jh gS\ D;ksafd] tc gq;s dk uke t+cku esa vk;sxk rksfdjnkj sgq;s t+gu esa vk;sxk vkSj tc fdjnkj sgq;s t+gu esa vk;sxk rksfdjnkjs ;tnhn lkeusvk;sxkA tc fdjnkj sgq;s lscekjQr egCcr gksxh rksfdjnkjs;tnhn lscekjQr uQjr gksxhA cl rHkh] bUlku dsfdjnkj lscjkb;ksanjw gks tk;saxhA D;ksafd fdjnkjs;tnhn nqfu;k dh rekke cqjkb;ksa dk ,d ifjyUnk gSA

ckekjQr ;knsgq;s lseqlyfyd gksus dk vlj vkt dh nqfu;k eans§kuk gksrksns[k;] fd fdl rjg ;kgq;s dgdj fdjnkjsgq;s hij vey djus okyk bZjku] ckfry ijLr tkfye vkSj ;tnhn gqdwersa vkSj 'kSkuh Superpowers lsVdjk;k gqvk gS u :l lsenn ysks] u vejhdk lsenn ysksA D;ksa\ D;ksafd gq;s usviusoDr dhnksuksaSuperpowers ;kfu ;tnhn gqdwer vkSj :eh gqdwer dksBksdj ekj nh

FkhvkSj ;kgq;s dksfcnv+r dgusokyhcnd kj vjch gqdwersafdl rjg fQfyfLrfu;ksa dksvdyk NksM+ j bljkbZy dsl keusl sQ+ kj v[r;kj fd;sgq, gSA

vxj ckfry dksdqpyuk gS gd+ dh jkg ij pyuk gSeqlhcrksa dsoDr esa Hkh fgEer vkSj lczdkn keu ughaNksM+ kgS;k ;wa dgha fd nqfu;k dkstUur cukuk gSrks ljnkjsa tokukust Uur bekesgq;s dh ;kn dksrkt+k djds mudsfdjnkj dsuD'k ij vey djuk iM+sxk] ojuk fdjnkj dhi Lrhdh ;gl jur vkSj Hkhcn+ jhu gksht k;sxh vkSj nqfu;k tgUue lsHkh cn+ j gkst k;sxhA

nkor gSrekee cuhuksa&bUl kuh dkspkgsog bl oDr Hkh ckfry dsl kFkD;ksau gks dsvkt kvksvkSj bekesgq;s v0 lscekjQr egCcr djdsmudh ;kn euk dj mudsfdjnkj dksuewu&,&vey cukdj viuh ft+nxh lekj yksvkSj gq cu tkvksA

is us 29 dk 'kSk------------------

जंग पर जाते वक्त अगर अपनी मां—जाई बहन ज़ैनब से रूखसत हुये तो माँ की कनीज़ फिज़्ज़ा को आखरी सलाम किया। यह है अख्लाक़ की वह बलन्दी जो किरदारे हुसैन से मिल रही है।

करबला के समुन्दर में किरदार की ऐसी लातादाद मौजे हैं लेकिन हुसैन के किरदार ने जिस अज़ीम शैय का इन्केशाफ़ किया वह यह थी कि ऐ बनी—नौ—ए—इंसान तुम्हारा वजूद कभी फ़ना होने वाला नहीं ! अगर तुम्हारा किरदार क़ानूने इलाही की पैरवी और बातिलाना इक़दाम के ख़िलाफ आवाज़ बलन्द कर देने वाले हौसले रखता है तो तुम हमेशा हमेशा की हयात के हक़दार होगे। वरना मौत तुम्हारी ज़िन्दगी का दूसरा नाम है जिससे तुम कभी छुटकारा न पा सकोगे।

इसी लिये किरदार का वह चशमा जो करबला की खुश्क और रेतीली सरज़मीन पर बहा था, दुनियाये इन्सानियत के लिये हयात बनकर छा गया जिसकी याद से हम आज भी सरशार हैं और अपने किरदार की तमाम बलन्दियों पर पहुंचते हैं।

foukk'k lsdY;kk dh vk's

uhye ijohu lkgsk dkuiqjA

vYikoLFkk lsvkt rd vk's dnkfpr thou dsv fUre {k.kkard /kkfeZd ifjppkZ k's /keZxzUFkk's iøDrkv k's lq{kd ka,oaf'k{kd ka} kjk tc gq'S ¼o0½ dkuke vk;kgS,d ghckr lqusdksfeyh gSA

^^vxj gq'S ¼o0½ u gksrs rks bLyke ugha gksrk] bUlkfu;r dk [kkrek ;dhuh FkkA gq'S lcls cMk+ dstkfgj fn[kkdj tgkusbUlkuh dksrtZg;kr c['kh] gq'S ¼o0½ usdjcykdsrirsgq,slgjk eav theq'kku vk's vnhemyutkfj dqckuh isk djds ;g lkfcr dj fn;k fd jgrh nfqu;k rd dsbUlkukavium gd+'kukl fuxkgkadksejh tkfuc eksM+dj ns[kksesar Egea tckusczstckuh dstfj;s;scrkuk pkgrk gwfd ckfry [okg fdruk gh rkdrroj D;kau gks lkfgcsr[r+ksrkt D;wu gksekfydslhekat j+ D;kau gksyfdu vxj og gd+lsVdjkrk gSrks ml dsik, r[r+ ytkZcj vUnke gkstkrsgS rkts'kkgh pduk pwj gkstkrk gSml dh nkSyr ml h dh dczcu tkrh gSA gq'S dk ;g nlZ ,sk Fkk fd lfn;kaxqtj xbZ eqjZkhu dsdye vkxsc<+ eQLLkjhu dsycgk, rkjh[k+ xksdkas lc us;dtcku gksdj dgk gq'S vterkadsvkQrkcsuhejks dkuke gS ;tho ifLr;kadh Mwrh 'kke dkuke gS*A

e'sHkh dcZk dhnq{kn xkFkk dkv/;;u fd;kgSvk's tgkrd e's sfopkj 'kfDr usdk;Zfd;k e's^^VS Mhv kQ djcyk** dsrRokad ksle>usdkHkh izRu fd;kgSA eq sdjcykds,d 'kjw&ohj egku ;ks kvk's fot;husvR f/kd iHkkfor fd;kgSA ;g ;ks kdksZvk's ughagq'S ¼o0½ dkvium cVk Fkk ftlusfdlhj.k&{ks= eaHkh;q dkSky ughafn[kk;k Fkk] dHkh?kqM+lokjhughadhFkh] fdlhls;q fo|kughalh[khFkhijUrqtc og j.k&{ks= earirhgqZ/kwi eav k;krksckiidhifo= xksn eal okj Fkkml dsgkFk ea dksZ kL=u FkkcfYd og Lo;a'kL= cu dj vk;kFkk ¼t S k fd ;tho dhl ak vk's ml dsl akfu;ksusv uqko fd;k Fkk½ gk] og Fkk gq'S dk 6 ekg dkyky vyh vlxj+A ,d okd;+k e'sml ds;q &dkSky dkHkh fp=.k djnsA gq'S ¼o0½usbl ;ks kdkifjp; Lo;adjk;k vHkhokD; iwjkHkhughagqykFkkfd ,d rhj ml cPps dhxjnu ij yxkrhj yxrsghcPpsdsl;kl sv k's mnkl v/kjkaij eqdjkgV dh ,d js[kkafp[kp xbZekukaml usefR; qdkseg fp<+kfn;k;gh ,d og eqdjkgV Fkh ftlusckM&cM+sfunZh;ks kv kadksl j >qdkusij ok/; dj fn;kA og cgknjq flikgh vej gksx;kvius vuks[ksj.k&in'kZulsA ,d fot;hdhHkkfr og uUgk ;ks k;q &{ks= lsokil iyVkA e'sslgL=kacksj bl cPps dsckjseai<+k lqkvk's ykssadksl qk;kvk's cgqkk fopkj fd;kfd ;fn ;tho dksdksZcsS Fkkrksgq'S ls Fkkfdrqbl cPpsusml dk;kml dsl kfFk;kadkD;k fcxkM+kFkkftlsdhl;kl dkmRrj f=i{kh rhj lsfn;k x;kA gq'S dhmu cfgukausD;k fcxkM+kFkkftu dk ?kj yWkx;kA vcykvkav k's nkSkjfgr cPpkadsl kFk ,sk vekuqkd Qogkj D;kafd;kx;kA vUrr%e'sbl ifj.kke ij igqphfd ;tho okLro eadoy gq'S ¼o0½ dk'k=qughaFkkcfYd ml dh'k=qkjlyw lsFkhA bLyke dsmnns; fu;ekav k's rF;kal sFkhA dqy feykdj og ekuorkdk'k=qFkkA og pkgrk Fkkfd gq'S HkhfeVa lkFk ghog lHkhdq feV tk, tks,d lqfTtr ,oa lqfBr lao/kku ds:i eagq'S dsukukjlyw vYYkkg ¼o0½ekuorkdsfgrkadhj{kkdsfy,] ipe] lR; vk's cU/kRo dsfy;sNkM+x;sFksA ;tho fgad iøfRr dkf'kdkj gksdj ogh djcBk tksv f/kdrj eUn&of) dsQ fDr djrsgSA ulfr dkfojk'khulfrK lsyM+cBk] ekuorkdkc'hitwuh; euq; lsVdjk x;k] jkT; dkykHkhlUr lstkfHkM+] ifj.kke ;g gqk fd gq'S egkurk dsxxu dsifw.kZek

¼ks'k i's u0 27 ij-----------------½

djcyk dh cfyosnh

dcjyk dk /keZ ,oa v/keZ ds e/; ,d ;q)

Mk0 Wogh fet kZ guQh] y[kuÅ ;wfuof lZVh

झूठ और सच का युद्ध, न्याय और अन्याय की टक्कर उसी समय शुरू हो गई थी जब यह संसार बना और मनुष्य का जन्म हुआ। इतिहास के पन्नो में ऐसी सैंकड़ो मिसालें आसानी से मिल सकती हैं कि इस संसार में चप्पा चप्पा उन शहीदों के खून से रंगीन हो गया जो सच्चाई के लिए अपनी जान पर खेल गए। वे तलवारों की धारों और नेज़ो से घायल हुए और आग की लपटों में जल कर राख हो गए मगर उन्होने अत्याचार और अन्याय के आगे सिर नहीं झुकाया। इन्हीं शहीदों के कारण आज भी दुनिया इस क़ाबिल है कि इस में इन्सान जिन्दा रह कर आजादी की सांस ले सके। इन्हीं की क़ीमती क़ुर्बानियों का यह नतीजा है कि सच्चाई और इन्साफ का नाम दुनिया से मिटा नहीं! परन्तु जो घटना तेरह सौ साल पूर्व करबला के मैदान में हुई वह कई तरह से अनोखी है यही कारण है कि इसकी याद इस्लाम के बेटों के दिलों में ही नहीं बल्कि हर मुल्क, हर क़ौम के दिल मे जीवित है।

इस्लाम के प्रारम्भ से पहले अरब के लोगों की जो हालत थी वह सब को मालूम है। वे एक ऐसी कौम के लोग थे जिनका मानसिक स्तर धन और और दौलत के साथ ही गिरता गया। सबा और हमीर के क़िस्से पुराने हो गये थे। खोरनक और सदीर के महल खंडहर बन चुके थे। शद्दाद का बाग़ नाम मात्र एक कहानी रह गया था। और बिलक़ीस का तख्त नष्ट हो चुका था। अरबो के तिजारती क़ाफ़ले अब भी रियाज़, यमन, और शाम के शहरो में आते जाते थे लेकिन माल और दौलत का वह वैभव नष्ट हो चुका था जो हिन्दुस्तान और अन्य पूर्वी देशों से आने वाले माल लदे जहाजों से प्राप्त होता था। अरब अब भी सखी और मेहमान नवाज़ थे, लेकिन जलन लालज भी उनमें आ गई थी। धर्म के नाम से वे निरे कोरे न थे।

अब भी हर साल वे हजारों की संख्या मे उस ख़ान–ए–काबा मे जमा होते थे जिसकी बुनियाद हज़रत इब्राहीम और उनके बेटे हजरत इस्माईल ने रखी थी। लेकिन वे इस घर के असल बड़कपन और बुजुर्गी को भूल चुके थे। उनके निकट हज की रस्म एक मेले से अधिक महत्व नही रखती थी। मक्के में जमा होना उनके निकट दौलत और रूप की नुमाइश, शेरगोई और आपस का मुकाबला था। वे अब भी बहादुर और यश्सवी थे, मगर उनकी बहादुरी में अत्याचार मिला था। इंसाफ की कमी थी । वे गैरतमन्द थे मगर उनकी गैरत का अर्थ इतना बदल गया था कि खुद अपनी बेटियों को अपने हाथों जीवित कब्र में डालने से भी परहेज़ न था। लड़ाइयों में ऊटों और बकरियों के साथ स्त्रियों को भी पकड़ ले जाना और उन्हें दासी बना लेना उनके निकट कोई गलत बात न थी। वे शराब पीने को बडक़पन का चिन्ह समझते थे । जुआ खेलने को जवांमर्दी समझते थे। तरह 2 की बुराइयाँ उनके जीवन का अंग बन चुकी थी उनके दिलो दिमाग प्राचीन कौमों की तरह सादा पत्थर जैसे नही थे जिन पर ईमान का नक्श बना दिया जाए बल्कि ऐसी किताब थे जिस पर तरह–तरह के नक्शे पहले से मौजूद थे। इन्हें छीलकर एक नई तहरीर और शकल बनाने की ज़रूरत थी और इसीलिए हमें इस्लाम के पैग़म्बर के बड़कपन और महानता का अन्दाज़ा होता है। हम उन कठिनाइयों को समझ सकते हैं जो उन्हें अरब में इस्लाम के प्रचार में झेलनी पड़ी। फिर जब हम

इस सफलता को देखते हैं जो उन्हें अपने जीवन में मिली तो हमें सचमुच कुरान और उसकी षिक्षा एक आष्चर्य जैसी लगने लगती हैं।

रसूले खुदा ने कुछ वर्षो में ही अरब की काया पलट दी। उन विभिन्न कबीलों को जो भटकते रहते थे एक संयुक्त कौम बना दिया। उन्होंने न सिर्फ उन बुतों से खान–ए–काबा को पाक और साफ कर दिया जो सदियों से वहाँ जमा थे, बल्कि अरबों के दिलों से जुल्म और बेइंसाफी के चिन्ह मिटा कर उन्हे सच्चाई के नूर से रौशन कर दिया अरब के वे बंश जिनके नाम से भी दुनिया की बहुत सी क़ौमे परिचित न थीं, इस योग्य हो गये कि कैसर और किसरा की सलतनतों को अपने घोड़ों की टापो से कुचल दें और इस्लाम का झंडा यदि एक और अटलांटिक महासागर की लहरों पर लहराता दिखाई दे तो दूसरी ओर मंगोलिया के ध्वज खडों पर भी लहराये। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या यह हृदय परिवर्तन पूर्ण था ? क्या सचमुच अरबों के दिलों से उनकी तमाम बुराइयां मिट गई थीं? क्या उनके सीने में जलन और नफरत नहीं रही? क्या वे अज्ञान की उन सब बातों को भूल गए थे जिनके आदी वे कई नस्लों से थे? ऐसा होना इन्सानी आदत के विपरीत है। यह असम्भव था कि तमाम अरब एकदम फरिष्ता बन जाते। उनमें से अब भी बहुत से लोग बाकी थे जो कुफ्र की आग सीनो में दबाये रखते थे। यह आग इस बात की प्रतीक्षा मे थी कि माफिक हवा का एक झोंका चलते ही भड़क उठे और सच्चाई के उस किले को जलाकर ख़ाक कर दे जिसकी नीव बद्र और ओहद के युद्ध के शहीदों की ख़ाक और खून से पड़ी थी। इसका एक मौक़ा रसूले खुदा की मत्यु केबाद ही मिल गया और कई अरब कबीलों ने यह कोशिश की कि इस्लाम ने जो प्रतिबन्ध उन पर लगाये थे उनसे छुटकारा पा लें और पुन; अपना पुराना जीवन और आदतें अपना ले। यह ख़राब चरित्र जो तहरीके इस्तदाद के नाम से जाना गया, इस्लाम की शिक्षा के लिए बहुत बड़ा खतरा था। परन्तु इस्लामी हुकूमत ने बड़ी मुस्तैदी से इसका सामना करके उसे जल्दी दबा दिया। मबर चूँकी रोग की जड़ न गई थी। वह धीरे „ बढ़ता गया। ख़लीफा ततीय के शासन काल में इसने जोर पकड़ लिया। इस जमाने मे इन लोगों की ताकत बहुत बढ़ गई थी जो सचमुच रसूल–अल्ला और उनकी शिक्षा से पूरी तरह प्रभाति नही हुए थे। इनो होंठ इस्लामी कलमा से परिचित थे मगर उनके दिल ईमान की रोशनी से कोरे थे। वे अपने को मुसलमान कहते थे मगर उन्ही सब चीजों में रूचि रखते थे जो अज्ञान के युग में उनके बाप दादा को पसन्द थी। न सिर्फ यह इनमे बहुत से ऐसे थे जिनको रसूल अल्ला के परिवार से पुराना वंशगत वैर था। इसी कारण वे इस परिवार से जलन रखते थे और उस शिक्षा के भी बैरी थे जिसने लोगों को तमाम मुसलमानों की नजरों में ऊँचा और बुजुर्ग बनाया था। इसी कारण आश्चर्य न था कि ये लोग अवसर पाते ही अपनी पुरानी नफरत का इज़हार शुरू करें और तमाम हुकूमत अपने हाथ में लेकर अपनी इच्छानुसार तरतीब देने का प्रयत्न करें ।

चौथे ख़लीफा यानी हजरत अली के काल में यह शत्रुता पूरे जोर पर थी । हजरत उस्मान का शहीद होना गोया मुसलमानों के शीराज़े का बिखर जाना था। इस घटना से खुदगर्ज़ लोगों को बहुत अच्छा अवसर मिल गया। वह हजरत अली और ऐहलेबैत के विरूद्ध लोगों की भावना को भड़काकर अपना मतलब पूरा करें। अत; शाम के हाकिम अमीर माविया ने अपना स्पष्ट विरोध शुरू कर दिया और हजरत अली के विरोध में, जिन्हें मदीनें के जन जन ने एकमत होकर मुसलमानों का ख़लीफ़ा चुना था। खुद खिलाफत के दावेदार बन बैठे। इस विरोध का नतीजा जंगे सिफ्फीन थी जो दुर्भाग्यवश फैसला न कर सकी। इस्लामी हुकूमत दो हिस्सों में बंट कर रह गई। अमीर माविया अब एक हिस्से के मालिक थे और उन्होंने अपने बल,

चातुर्य और मार्काबन्दी से विभिन्न मतों और विचारों के लोगों को अपने इर्द गिर्द जमा कर लिया। जब उन्हें विश्वास होगया कि उनका शासन मज़बूत नीव पकड़ चुका है और जब उनके बड़े समकालीन हज़रत अली की मत्यु हो गई तो उन्होंने अपने विश्वास और सिद्वांत को ताक़ पर रखकर यह कोशिश की कि ख़िलाफ़त उनके परिवार में मौरूसी (पैतक) हो जाये और योग्यता को हमेशा के लिए उससे वंचित कर दिया जाये। इस मकसद को पूरा करने के लिए उनहोंने अपने बेटे यजीद को अपना जानशीन घोषित किया और रोबदाब और लालच से बहुत से मुसलमानों को इसबात पर राज़ी कर लिया कि नामांकन इस्लाम के नियम के विरूद्व थी। इसीलिए ख़िलाफ़त को अब तक मौरूसी नहीं माना गया बल्कि यह कहा जाता था कि जो व्यक्ति सबसे अधिक उपयुक्त हो उसे ख़लीफ़ा बनाया जाय। उनके अनुसार यज़ीद में वे तमाम गुण नहीं थे जो मुसलमानों के पेशवा व हाकिम कें होना जरूरी है। जानमाल की लालच ने बहुत से मुसलमानों को विश्वास करने पर महजबूर कर दिया। गिने चुने लोग ऐसे रह गये जिनकी आत्मा यह कभी नहीं मान सकती थी कि वे ग़लत और बेजा बात से सहमत हों। यज़ीद जैसे अनुपयुक्त और फ़ासिक़ फाजिर को मुसलमानों का मज़हबी नेता मान लें? उनका दिल यह किसी प्रकार नही मान सकता था कि सच्चाई की रौश्नी को जुल्म की हवा से बुझते हुए देखें और दम न मारें इन्हीं मुछ आलोकित लोगों में हजरत इमाम हुसैन भी थे।

हज़रत इमाम हुसैन बचपन से ही रसूल अल्लाह की छांव तले पले और उनकी मत्यु के बाद अपने पिता जी की तालीम से लाभ उठाने का पूरा अवसर मिला। आप मे वे तमाम गुण इकटठे थे जो एक सच्चे मुसलमान में होने चाहिए। आप उस समय खान्दाने नबूवत में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते थे आप पर इस्लाम और मुसलमानों की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी थी। आप हर तरह अपना यह फर्ज समझते थे कि सच्चाई और इन्साफ इस्लाम की शिक्षा का बहुत बड़ा अंग है। जबरदस्ती और जूल्म के हाथो तबाह न हो जाये, सो आपने बिना किसी स्वार्थ के निडर होकर यज़ीद के नेतृत्व से इंकार कर दिया। स्पष्ट है कि यह बात अमीर माविया को नागवार गुजरी होगी, लेकिन वे समझदार और राजनीति वाले इंसान थे। उन्होंने समय को समझा कि हज़रत इमाम हुसैन को मजबूर किया जाये परन्तु उनके निधन के बाद यज़ीद तख़त पर बैठा उसने फौरन अपने लोगों को आदेश जारी किया कि जिस तरह भी हो हजरत इमाम हुसैन और अन्य लोगों को वफादारी और हुक्म मानने का हलफ उठाने पर मजबूर किया जाये। लेकिन जो गर्दन लालच और स्वार्थ के आगे न झुकी थी वह अब इन धमकियों के आगे भी नीची न हुई। हज़रत इमाम हुसैन पूर्ववत अपने इंकार पर कायम रहे। बल्कि जब आपने देखा कि आपका खामोशी से कोने में चुप बैठा रहना काफी नहीं हैं और इसका खतरा है कि कुफ्र की चिंगारी बढ़कर इतनी कवी हो जाये कि इस्लाम के अस्तित्व को खतरा पैदा हो जाये तो आपने शपथ ली कि इसके विरोध में जिहाद करेगें। जिस प्रकार भी सम्भव होगा, उसे रोकने की कोशिश करेंगे। आपके पास इस जिहाद के साधन क्या थे? एक ओर यजीद पूरी फौजी और माली शक्ति लगा सकता था जो उसके राज्य में मौजूद थीं। दूसरी ओर इमाम हुसैन उन चन्द आदमियों की वफ़ादारी पर भरोसा कर सकते थे। जिन्हें अब तक खौफ या लालच ने ईमान से बेगाना न किया था वे इस सच्चाई को जानते थे कि सत्य का युद्ध किसी एक मैदान में नही जीता जासकता और न ही हार जीत का फैसला एक मैदान पर निर्भर है। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि यह लड़ाई होती रहेगी और अन्तत; जीत सच्चाई की ही होगी। चुनानचें अपने दिल में यह विश्वास बिठाकार उन्होंने कूफे की ओर रूख किया। इस शहर में बहुत से लोग उनके पिताजी के चाहने वाले थे जिन्होंने उन्हें

मदद देने का वादा किया था। लेकिन आपके कूफे तक पहुँचने से पहले ही वहँ की स्थिति बिल्कुल बदल गई। जो लोग पहले लम्बे चौड़े वादे वफ़ादारी के कर चुके थे, अब शसन की शक्ति से ऐसे प्रभावित हुए कि अपने वादों को पीठ पीछै डाल कर हजरत इमाम के विरोध में भी उन्हें हिचक न रही। आपको कूफे वालो के इस विश्वासघात की खबर तब मिली जब आप मदीने से रवाना हो चुके थे। संभव था कि इस खबर को सुनकर किसी मामूली आदमी के इरादे में कमजोरी पैदा हो जाती, लेकिन हजरत इमाम हुसैन मामूली आदमी न थे। वह इंसानो पर भरोसा नही रखते थे और संसार की कोई शक्ति उनके इरादों को कमजोर नहीं कर सकती थी। उनका भरोसा खुदा पर था और उनका ईमान था कि खुदा ए ताला ने अपने कलाम पाक में जो फरमाया है कि खुदा अपने नूर को कामिल करके रहेगा। मुनकिरों को कैसा ही बुरा क्यों न मालूम हो,वह होकर रहेगा। सच्चाई की फतह होगी और झूठ तबाह और बरबाद होगा। आपके हिम्मत भरे कदम एक पल भी नही डगमगाये बल्कि आप उसी हौसले के साथ आगे बढ़ते गये अब आप दिल में एक बहुत बड़ा निर्णय ले चुके थे और वह यह था कि इन्साफ और सच्चाई के रास्ते में जान दे देगें ।

इस कारण कि इस बड़ी क़ुरबानी के बिना यह सम्भव न था कि मुसलमानों को उनकी गफ़लत की नींद से जगाया जाए और उनको इस ख़तरे से सावधान किया जाए अब समय सन्देश और नसीहत का नहीं था। अब खामोशी का दौर समाप्त हो गया था। अब ज़रूरत अमल की थी। आप चाहते थे कि इस्लाम या दूसरे शब्दों में सच्चाई के पौधे को अपने खून से सींच कर परवरिश दें और अत्याचार की तेज हवा में मुरझाने न दें। आपका मकसद था कि सच्चाई के लिए शहीद होने का एक ऐसा उदाहरण क़ायम करें जो इन्सानों को उस समय तक याद रहे जब तक उनके दिलों में संवेदना और आखों में ऑसू बाक़ी हैं । आप इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुऐ इसे बताने की ज़रूरत नहीं। तमाम दुनिया जानती है ।

करबला के मैदान में क्या हुआ? इन दर्दनाक घटनाओं का स्पष्टीकरण यहाँ ज़रूरी नहीं। एक आंधी थी कि जिस ने मुठठी भर धूल को बहा दिया या एक तूफान था जो एक कमज़ोर किश्ती को बहाकर ले गया। दुनिया ने यही देखा कि हज़रत इमाम हुसैन और उनके मुठठी भर साथी चन्द घन्टों में एक एक करके ख़ाक और ख़ून में एड़िया रगड़ कर शहीद हो गये। दुनिया ने यह भी देखा कि ज़ालिमों के हाथों रसूल के परिवार वाले एक उजड़े हुए काफ़िले की शक्ल में शाम के गली कूचो में फिराए गए इन परिवार वालों की इज़्ज़त और बड़कपन को फरिश्ते भी मानते थे। जानने वाले यह जानते थे कि इस तमाम अत्याचार के बाद यजीद फतह का दावा नही कर सकता था बल्कि फ़तह हज़रत इमाम हुसैन और उनके बहादुर साथियों की हुई। यज़ीद का नाम हमेशा के लिए जुल्म और बेइन्साफी का प्रतीक बन गया। हज़रत इमाम हुसैन का नाम कयामत तक इन्साफ़ और सच्चाई के अलम्बरदारों में हुआ। हज़रत इमाम हुसैन की यह क़ुरबानी किसी क़ौम या धर्म के लिए नहीं थी। यह उन तमाम सिद्धान्तयों के लिए थी जिनको संसार के सत्य प्रिय लोग मानते हैं। उन्होने केवल इस्लाम को तबाही से नही बचाया बल्कि इन्साफ़ और सच्चाई को ज़िन्दा कर दिया। वह बेकसों और दुखियों के सहायक थे और उस समय अत्याचार के विरूद्ध सीना ताना जब किसी और में यह साहस न था कि उसके ख़िलाफ उंगली भी उठा सके। उन्होंने उस समय सच्चाई का स्वह ऊँचा किया जब किसी को आह करने की भी हिम्मत न थी। वह अपनी जान से गये लेकिन ईमान को जिन्दा कर गये। उनका उदाहरण हमेषा के लिए मनुष्य जाति के पथ पर मशाल का काम करता रहेगा ।

ckfd;k ist uEcj 41 ij ----------

ge gksa tx jks;s!

if.Mr Jh opu'k f=ikBh

^dfcjk* tc ge iSnk Hk;s tx gals ge jks;sA vc ,Slh djuh dj pyks ge gals tx jks;sAA

la dchj nkl dk ;g dyke gSfd] ^tc geusnqfu;k eatUe fy;k rks le; ge ,d cPps ds :i ea: nu dj jgsFksvkS nqfu;k ge ij gal jgh FkhA ysfdu vc gksk lHkky ysa ij ge dN ,Slh ft Unxh ft;a vius tkus dN bl rjg <ky aafd tc ge lalkj NkM+jgsgkas rksgekjs gkaBksaij galh gks ysfdu gekjsxe eanqfu;k dsreke yksx jks jgsgksa

fdlh lRdehZ lnHkehZ vkS lR; dsiqtkjh iq; vkRek iq"k dsegkiz.kkij ghdchj nkl dh ;g okk.kh pfjrkFkZgksl drh gSu fd jko.k] da ;k fdlh vU; tkfye dsnqfu;k NkM+sijA

lalkj dseghu 'kgnkeaygtjr beke gqlSu ¼vo½,d ,ssgheghu cfynkuhFksftudhdqckZhij vkt Hkh nqfu;k dsyk[kksadjksM+ksabalkusjksrsgSa 'kks foâyg gksmBrsgSa bfrgkl lk{kh gSfd beke gqlSu ¼vo½ usdHkheksS dheqyd ijokgu dhA oLrq%; tku dksudkjukiM+ {keR;qdkscyl okn'k FkkA ijUrq mUgksasu viust hou dsfy, lkpku viusdqUcsds fy,&oju~mUgksas 'kkq v~eagh ,d xyr vkS xyrlt+ vknehdh X+qykehdjusl sl kQ+bUdkj dj fn;kA n`<+ ldYi dj fy;kfd ;g lj ;thn dslkeusfdl hHkh dher ij ughs>qd ldrkA ;thn Øwjneu dRrk ZFkkA og neu pØ pykrkjgkA u flQZ enhuk cfYd dv ds vkS djcykrd beke gqlSu ¼vo½dkihNk NksM+kA ysfdu beke gqlSu ¼vo½Fksfd viusfl)kUr ij n`<+ jgs dHkh ,d {k.k dsfy, Hkh fopfyr u gq,A ml odr~ Hkh tc fd dbZ jkst+dk l;kl kmudk N%egh usdkc P;k vyhvlxj+] rhj kal sfcaàkdj] ygwygku gksdj] mUgksa dhxksa eane rksM+x;kA

dSkeqyeku Fkk; tks fd ft ldsvknsa kls ,d&,d cwanikuhdsfy, cPpksadksrM+k;kx;k vkS fQj dRy djkfn;kx;kA

odr+sftegk tkuoj dksnsrsgSaikuh fiykA gtjrs bUlku dksikuh fiykuk gSeuv+AA

dSkFkkog ^^[kyhQk** ftlusbeke gqlSu ¼vo½dsvgy&gje dkseSnku&,&djcykl sdSn dj eaxk;k] dSkFkkog nhunkj fd ftl dhQkSt kausebDdk &enhuk vkS dvckdksrckg o cjckn dj Mkyk! vkS ftlus¼ tkusu½[kq viusgkFkksal sbeke gqlSu ¼vo½dsdVseLrd dksviekfur djusdsfy, ml ij cs l sigkj fd;kA

^^gekjh [kkd Hkh cknsQuk cjckn djrsgSa

og ptku tksu flQZ Ikjkc [kkjhdjrkFkk cfYd ftukdkjht SsxqKgksadsl Sjkc eaxy&xysxdZ FkkA tksljsvke fo}kukadkviekdu djrkFkkA ml ;tku dksbeke gqlSu ¼vo½tSk/keZek dSsLohdkj dj ysk\ ;tkus;glc ddeZfd;segt+lRrkds fy,] gdqer dsfy,A vxj gqlSu ¼vo½dksgdqer njdkj gksrhrksD;kog Hkh viuklaBu ;kviuh lsukbl dsfy, ughs[kM+h dj ldrsFks\ ysfdu og lRrkyksyqiu Fks lk/kqiq"kFksA og v/;kRe ds lk/kd FksA lRrkdh] 'kkl u dhmUgsapkg u FkhA lkFk gh og fdl hikfi"B dkusRo Hkh LohdkJ ughsdj ldrsFksA vcyRrkog 'kksk tkou] 'kkfr dslkFk Hkkjr eafcrkn okdgha J,Ldj le>rsFksA ;fn ;tku mu dkiFkkojksku djrkrkst+j og Hkkjr dhlj teha ij jkskd+vQ+kjS+gksssvkS mu dhlRlx ikds;gka dslTtu vkS lPpkbZijLr ykx ilUn gksrsA

v/;;u lsirkpyrkgSfd gtjr beke gqlSu ¼vo½fny vkt+jh ¼ij&ihM+½dksv/keZekurs FksA og ij&nq[kdkrj Fkfsnq[k;kadsgennZFksA tc fd ;tku [kqx+hZlsijkj gksdj yEgk nj yEgk fny vkt+jhdke''kkd+Fkk vkS tksj tqYe dkcrkZ mldsLoHkko&lakdfr eajp cl x;kFkkA eSughaekurk fd nhu&,&bLyke fny vkt+jh dk leFkZd gS eSa vYykek ^^bdcky** **dsfpUru vkS dFku lscgq**

lh txgka ij lger ugha gqvk ijUrq ;gk¡ ij mUgksaus cgqr Bhd dgk gSA

ud~-krkfgm dk gj fny is fcBk;k ge us A

tjs [kkd tj Hkh ;g iSke lquk;k ge us AA

D;ksafd ;g iSke ¼lans'k½ [kqnk dsu kjsyA dsbeke gtjr bZ'o j½ usdjcykesa lqk;k FkkA v kl lTns esa Fkk v kS dkfry dh Nqjh xnZu ij Fkh v kS v ki iSke ¼mEer ½dh Hkykbz dsfy, [kqnk l siZ'kd dj jgs FkA

'kgkn ns[kh dky ;k/ke Zdh lhe kv ksa l su cka/ksgksssgSa v kS u cka/ksA oju-os l Ei wkZ tka ij v kS l dy ekuorkdsgksssgSa v f[kky txr dsykxs l dqj+kr] esa jw] tk;l h] dcj] v kt kn] Hkxr fl g} [kqnh jke v kS v kdk-l Qh-¼v ek i'zkn½ t Ssegkiq #kmudh 'kgknr l s ijs.kk ikr djrsgSA ;ghot g gSfd Hkkjr ds?kks ijk/khurkdsdky esa t c ;gka fon'skh v akz+ri jgs Fks v kS ;t ku dh rjg neu pØ pykjgs Fks rks ml tytykrs ekgkSy esa blkih ;a pazusmnZe eadjcykuk/d fy[kdj oru dsukSt okuksadksns'k dsfy, viuh ft Unxh dqckZuh djus dhu lhgr dhA eSa ;gysigy ogh iasrd i<+dj beke gtj S ¼v0½ dh cfynku dFkk l s ifjfpr gq k v kS ml si<+&i<+sdbZ ckj jksfn;kA ml oDr l gl k ; si Dr;k¡ l keus v kdj t Ssckj mBhafd&

^^vlxj+ gj h esb'd+ eagLrh gh tqZ gSA**

j[kuk dHkh u ikp ;gka lj fy, gq AA

ubZ [kks dsnjfe;ku eSausdbZ ;y;§ kdkads y§ kaesa ;g Hkh i<+kfd t c ;tku us^gtjr beke ¼v0½** dh ?kjk cUnh dh rks ml oDr dkbZ fgUnw dehyk Hkh beke gtj S ¼v0½ ds i{k esa ;tku dh QkSt ks l sy MkA ;fn Qkj l hxtr Fkkos sHkh ;g rF; itk.kr gks l dsrks ;g iLrk dkcysxkS gSA eSa bl y§ keaks ugh afdl hnhvjsekSas ij [kks dj dsbu ckrks adks y§ k c) dj l drk gw¡A

;kn djrk gw¡fd eSaus dsjcyk esa beke gtj S ¼v0½ dk dkcjrhu jkst+rd l; k kjgky sd u ;tku dhrk dh dseqkfcd +mUgksa Nk&Nk sev Þ+v cPpksads fy, Hkh nfj;k &,&Qjkr l sikuhu ysusfn;kx;kbl ds f[kykQ +,d okfd+ knjiSkgqk FkkjktLFkku esa fd ogka ft l oDr v dcj dh QkSt v kS jk.kk izki esa tax gqh

v kS ml essa eqyr QkSt dkfl igl kykj tks v dcj dk fj'rsnkj Hkh Fkk&l sjekaa l kfrku] jk.kk dsckSsdhcNhZ l s t[+eh gksdj ne rksM+jgk FkkA rks ml usv ius ,d t[+eh l Suud dst fjv s jk.kk dksdgyk;k fd] bl tyrs jsfxLrku esa D;keqs sikuhu e;LlJ j gksxkA rks jk.kk izki [kqn xa kty HkjkxM+kydj l sjekaa l kfrku rd igqap sFks v kS v ius gkFkks a smUgsa t y fiykdsdgkFkk] ^^eSa syk; d +v kS dkbZ l sok gksrks cr §pd dfg, **A l kfrku usmudscksv ej fl g dks ,d ckj ns[kusdh [okfg'k t kfgj dhA jk.kk usv ej fl g dksmuds: c: i'kdj fn;kA ;g oghv ej fl g Fkk ft l dsckj l § l sjekaa l kfrku ft Ugsa t gkaxhj ^ppk fe;k¡ dgrk Fkk] ?kkrd :i l s?kk;y gq Fks v kS fQj dHkh mB ugha l dsA

,d v kS fel ky &;tku usbeke gtj S ¼v0½ d§ tksfd iSEcj ekgEen ¼v0½ dsukrh Fk§ djcyk esa 'kgkn gks t kusij] v gy§ gje dksdS+ dj fy;k v kS mUgsa Å ¥ksaij l Qj+ djusdsfy, eTcjw fd;kA bl dscjf[kykQ +,d mnkgj.ku;sfl jsl sml hjkt LFkku dhjs esa MHkjrkg§ t c jk.kk izki dsckSsv ej fl g usv dcj ds [kku [kkuk ;v +hfl igl kykj dk gjje dS+ dj fy;k rksjk.kk izki usbl dsfy, u fl QZ v ej fl g dhyv+r eyker dhcfYd mu l Hkh eS;Lye fL=;ksadksckbTt r+ v iusl Suudksadsigjsesa ;jghe [kkuk [kkuk dsikl l gf{kr okil fHkt okfn;kA rkfgn dh c§u;kn ,Sscrkbz l si g+kgks hgSu fd ;tku dsdkys dkjukes l sd@s esa ;tku dsHkks gq izkkj d bUus ft ;+kn usQj+ s dk l gkjkydj beke gtj S ¼v0½ dk fycki igukFkk rkfd og /kk§kk ngh esadke;kc gks l dsA ;g izkz ml Ny&izp dh;kn fnykrk gSt c jko.kusl hrk t hdksigoVh l smBkys tkusdsfy, ,d l k/kqdkosk/kkj.kfd;kFkk v kS l hrk t hl sfHk{kkekaxus igqpk Fkk eksd o feYyr Hkysgh t qkS t qkgksysfdu fn[kkbZ;g nsk gSfd jko.kgj ;q esa v krsgSa v kS muds [kkuhbjknsgaa rh&[kgrhnq;kdh v kcknhdks [kur v kS v kl q kadsl §kc esa Mqksnssgsa dkbZ enZ,&ekSeu bu jko.kkadks ;tkuksav kS bUu &,&ft ;+knka dksdSsv iukjguqkeku l drkgS\ dSsmUgsa lyke

ctkykl drkgS\

,Sshgh Toyar mnkgj.k eqLye fcu vdhy vkSj gkuh fcu mjok dsgSftUgkasrekeftYyrkoa vkSj tqYe o flre dkslgrsgq Hkhlr~dkiFk u NksMk+vkSj u beke gqlSu ¼vo½ dklkFk NksMkA ,d fnu bCu&,&ft;+kn dsigjsnkj lsgkuhfcu mjokdkeLrd QV x;kyfdu mUgkaseqLye fcu vdhy dksbCu&,&ft;+kn dsgokysugha fd;kA

;gokfdvk+rlk{kh gSfd enZ&,&ekSeu ekSr lsugha Mjrsc fYd mudk vdhnk ijwsÅ pspsLoj lseqlkj gksmBrk gSfd&

jgjosjkgsekgCcr] jg u tkukjkg eas vc rjsh fgEer dkppkZ xjS dhegfQy eagSA

'kgknr lc dksulhc ughagqk djrhA ejsss ,d nkslr Fksmu gsagqsorudstqZe avatzkausvkt Uk dkysikuhdhl tk+nh tc fd mudsdbZlkfFk;kadks Qkl hdhl tk+nh x;hA rksog ejssfe= cbk{n+k vnkyr eadg mBs&

eSanksj dkrkfyc Fkkj rDr+rj eaftUnk;gk dSseqsfey tkrkj tksgDds'kgknk;gkA

;vurhemQkl hdkrycxkj Fkkij rDr+rj ea fy[kh Fkhme zdS&fQj+eq,d 'kgn dkgd+dSsfey ldrkFkkA mUgaremUukjghfd mUgaHkhQkahD;kau feyhAoghvkgnkj oghgd&,&'kgnkaoghs:Rckt ks beke gqlSu ¼vo½ vkSj mudsevH+w cPpkavkSj lgdehZlkfFk;kadkse;LLj gqkA ,sk bfrgkl D;k dHkhHkqyk;ktkldrkgS\tksfny vktkjhvkSj[kqs+ djsog u fgUnwgSu eqLye cfYd ml dhfcjknjh jko.k]dk] ;tkn vkSj bCusft;+kn dhgSa

jko.krksctbe.kFkkegku _f"kiqyLR; dk ukrhFkkA ml dsfirkfoJokeqju HkhHkhcMsHkkjhfo}ku FksA jko.kHkhde fo}ku u FkkyfdumldsvkekydSs Fks\ fdl dnz[kqtkH+ij vkeknkFkkfd igysviusHkkbZ dkgd+Nhu fy;k&mlhppsHkkbZdqsdhFkhydk yfdu jko.kusi'kqy vkteekdjml HkkbZdksHkxk fn;kvkSj[kq'kd cucSBkfQjviuscgukbZdks dRy djMkykA vk;sfnu og ykxkadkslrkusyxk] fny vktkjhdjusyxkA[kwudjukmldhvknr cu x;hA jke ml sdSsrLyhe dj ldrsFks! og NksVs&NksVs ukpht &xjhc rcdsdsyksakadksxysyxkldrsFkstSk fd 'kcjhHkhyuh] xh/kj fu"kkn ¼doV½dksxysyxk;kA yfdu lRrkvkSj 'kfDr dseneamUer jko.kdksflj ugha>qdkldrsFkA ;ghmudhefgek&xfjek FkhA Hkys mUgsatay njtay]igkM+njigkM+HkVdrsgq reke eqlhcrsa>syuhiMhA ;ghn`<+rkbeke gqlSu ¼vo½vkSj mudslkfFk;kaeapfjrkFkZfeyrhgSa og [kqnkdksfeVk x;sA viukijwkdqcck U;kSNkoj dj fn;kA yfdu lPpkbZvkSj udhdhjkg :) ughagksusnhA fdrusgh ;tkn vkSj bCu&,&ft;+kn vk;svkSj pysx;sA muds ukefeVx;sA yfdu og ijjuwjkLrkvkt Hkhjkstu gSa lR; dkfpjkx+v[kMtyjgkgSD;kfd&

^^og 'kEv~D;k cqsftlsjkSsu [kqnk djs"**

iSxEcj 38 dk ckfd+k----------

यह वह करबला की घटना है जिसे मुसलमान हर देष में मुहर्रम के अवसर पर याद करके आंसुओं की भेंट अर्पित करता है। तेरह सौ बरस बाद भी मुसलमानों के दिलों मे इस घटना की याद वैसी ही मौजूद है। कोई मुसलमान ऐसा नही कि जिसके दिल में इस घटना कि याद से एक ओर दुख और दूसरी ओर हौसला न पैदा होता हो परन्तु जैसा कि मैने अभी कहा इस घटना का महत्व सिर्फ मुसलमानों के लिए ही नहीं हैं बल्कि तमाम संसार के इन्सानों के लिए है। इस कारण यह आवश्यक था कि इस कुरबानी के महत्व का एहसास हर धर्म के लोगों में पैदा किया जाये यह बात धन्य है कि अन्जुमने यादगारे हुसैनी के प्रयत्न से आज यह सम्भव हुआ कि मुसलमानों के साथ हिन्दू, ईसाई और दूसरे धर्मो के लोग भी मिल कर इमाम हुसैन की शान में वह श्रद्धान्जली पेश कर रहे हैं जिसके वह हर तरह से हकदार हैं। खुदा करे यह श्रद्धान्जली जीवन के हर क्षण में एकता बनाये रखे और आपस के उस भेद भाव को मिटा दे जिसके कारण हिन्दुस्तान अब तक दुनिया की कौमों में वह स्थान प्राप्त नही कर सका जिस का वह हर तरह हक़दार है।

tukc eqfLye bUlkus vdhy dh 'kgknr

tukc ekgEen gfQ+t lkgc

tukc eqfye jlwys[kqkv ikS v yh&,&ejrt k+ dsHkrht sgl uS dsppk t km HkkbZFkA v kidsokfyn tukc v dhy Fks v kidh foykn r cksl v knr **32** fg0 ea enhu%&,&eqUOjk eagqbZFkhA

v eht eq ko h; kdh ek S dsckn d Qsdk gky cgq gh cqjk gksx; kFkkA ft l dsfy; sd Q h; kausbe ke gqS u **¼vo½** dh f[knerea [kqw Hksus'kqv ~fd; sA igysrks[kqw dh rknkn cgq de Fkh] ckn eaft +knk gksus yxhA t c [kqw dh rknkn ft +knk o gj r; Q% o t ekv r~ dh rjQ l sv kusyxsrksbe ke **¼vo½** usbu [kqw ij xkS fd; kA v kS bUu&,&t +h j dk c; ku gS fd ml oDr d Qsea,d nks?kj dsv ykok%dksbZ'khv k ughaFkkA bl fy; sbe ke **¼vo½** usv iuh 'kv hZft Eesnkjh dksi jwk djusdsfy; sv iusppk t km HkkbZt ukc se qLye fcu v dhy dksl Qhj cukdj d Qsjokuk gksusdk gqDe fn; kA be ke dk gqDe i krs gh t ukc se qLye fcu v dhy :[kl r gksdj enhusigqpsp ftd be ke **¼vo½ 28** jt c l u **60** fg0 dksenhus l spy dj eDdsigqpsFksA ft l oDr v kius; g gqDe tukc eqLye dks fn; k ml oDr v ki eDdseaFksA tukc eqLye enhukealc l si gys jkS &,&j l wy i j igqps A ft +kjr djds?kj v k; sl gj dsoDr v iusnksdkcSVksaegEen v kS bcjkgle ½ftudh meZ**7** l ky o **8** l ky dh Fkh½ v kS nksjkg cjkadsl kFk jokuk gqgA fjok; r eagSfd ; g jkgcj d B l Skohv kS v Cng[Zjgeku fcu v Cn[ykg FksA

ft l oDr v kidks; g ft Eesnkjh l kSihx; hFkh ml oDr+ v kidh mez **28** l ky dh FkhA v ki ukS] ijgst +kj v kS i qrk v dhnsokyseksu FksA v gdkes nhu] bj'kknkrsjl wy v kS dqjv ku dseqkfcd v ey dksnqu; kdhgj 'k; l sv Qt+y le>rsFksA gj rjg dhijs'kkuhdkscnkZr djrsgqsv ki d Qsigqps A ogk; ij v ki tukc eqrkj bUu&,&v cqv qSk l d Qh+ ds edku ij fd; ke QekZgqsA v kidh v ken dh [kcj cgq rst h l sv oke esaigqph v kS yksx bdBBk gksus yxsA v kiusbe ke dk og [kr tksv gy+&,&d Qk+ ds uke Fkk i <+dj l qk; k ykska us [kr dks l q dj t kfu l kjh dk v gn fd; kA eqEey oQknkjh v kS ubjr dk ; dhu fnyk; kA pUn fnukesa **18** gt kj d fQ+ ksus v ki dsgkFk i j be ke **¼vo½** dh xkfj ckuk cSr~ dj yhA ckt +fjok; kr eagSfd cSr~ djusokyksadhrknkn **30** gt kj FkhA

bl hnkSku ; tn usmcsnqykgsft +kn dksfy[kk fd d Qseabe ke **¼vo½** ds,d HkkbZ eqLye bUu&,&v dhy ;gkaij gqS **¼vo½** dsfy; sdfQ; ksl scSr~ ysjgsgSa bl hfy; srq ogkat Yn l st Yn igqp dj ukseku fcu c'khj l sbekjrsd Qk dkpkt Zysyksv kS eqLye dkl j eqsiksl Hkst nksA b/kj tukc eqLye usd Qsdsgkykr dksbe ke **¼vo½** dsfy; s[kqkxokj le>dj be ke dks d Qsv kusdh l ykg HkstnhA

bUus ft +kn ; tn dk gqDe ikrsgh d Qs igqpkA tukc eqLye dksbUusft +kn dsv kusdh [kcj feyhrksv ki tukc eqrkj dk ?kj NksM+ dstukc gkuh fcu mjog ds?kj eqrfd +j gksx; sA bUusft +kn us v kidh fd+ke xkg dkirk yxkok; kA ekdh+ usv kdj bUusft +kn l stukc eqLye dhfd+ke xkg dsckjsea crk; kA bUusft +kn ustukc gkuh dkscqyok; k v kS mul sdgk fd eqLye dksgekjsgokysdj nksA yfdu tukc gkuh dsbUdkj ij **10** l ky dh mezeamudks [kEcseacU/kokdj **500** dksMs yxkusdk gqDe fn; k v kS mudk l j ru l st qk dj nk y bekjk i j yVdk fn; kA

b/kj tukc gkuhdhfxj¶rkjh v kS dRy dh [kcj tukc eqLye dksfeyh rksv ki tx dsfy; s r¸; kj gksx; sA i gysrksc Mh+rknkn eayksx bdBBk gqgA exj uekt sexfjc dsckn rd l c eHkkusdkjt kj l s

ckfd+k i st uo 44 ij ----------

'kgknr s gqbZ

tukc iz0 xksihukFk lkgc ^^v Eu** ngyoh

eSa v kSj ftUnk 'kgknr s gqbZ ¼xo ! ro½
^^p sfuLcr [kkd jk ck v kyesi kd**
exj gk; [kkd dh , d fuLcr t +j gS
ojuk bek e v yh ¼xo ! ro½ v cw gkc D; ksa

dgykr s bek e gqbZ iSarru ikd dh v fre dM+h gSa ml h rj g t Sl s gt jr egEen ¼xo½ ucor dh v kf[kj h dM+h gSa fdl h dk ucht&,&v kf[kj dh 'kku esa dFku gS%&

gqus; woQ nekbZ k ; nsc Sa+ nkj h
Åp s[kwck; gek nkjUn rwr ugknkjh*

bLkh i zdkj bek e gqbZ us Hkh v ius pkj ksa i Skj ksa ds sreke egkfl u fy, Fks t Hkh rks dfo us dgk

^^fudyk ; g ujw ujwsfjl kyr ekv kc l s
ft l rj g dkbZ brz fup kM+s x qyk c l s*

ijUrq ejsk ; g eul c ugha fd mu reke ckrksa ij jks'kuh Mkyh tk s cks rsjl yw l sy dj 'kgknr s bek e gqbZ ¼v0½ rd l keus v k; h eSa rks pUn l h/kh l h/kh ckrsa fy[kuk pkgrk gwfd v kt dh nqfu; k bek e gqbZ ¼v0½ l s D; k f'k{kk ysl drh gS%

jkt uhfr %&

pfd v kt dy l kjsl a kj ij jkt uhfr NkbZ gqbZ gS v r% l c l s i gys fl ; klr gh dks ysyh ft , A dqN yksx i f'peh f'k{kk ds ncko esa v kdj ; g l e>rs gSa fd jkt uhfr esa l c dqN pyrk gS i j Urq eSa , s k ugha ekurk v kSj dksbZ eqgyeku rks , s k fdl h n'kk esa ugha eku l drk t c /keZ l s jkt uhfr dks v yx ugha fd ; k t k l drk rks fQj jkt uhfr esa eØ o /kks[kk /kM+h djus dk v FkZ rks ; g gq k fd xks; k /keZ /kks[kk /kM+h v kSj pky &ckt h dsfy ; sy k; k t k jgk gSA bek e gqbZ ¼v0½ us pkgk gksrk l ks"kZ i gys ; g f'k{kk nh fd jkt uhfr dks Hkh v kSj thou dsQrh djus dsrjhdksa dh rjg gd +ij v k/kkfjr gksuk pkfg; sA ; g v o'; gS fd bl dk ekxZ; cgqr nq% k i M+rk gS i j Urq bl ekxZ; l s gh dkSeksa dh l Q[k curh gS bek e gqbZ ¼v0½ v xj 'kghn u gksrs rks eqgyeku v kt dgka gksrs v kSj gksrs Hkh rks D; k gksrsA

dfo bdcky us fdruh v PNh ckr dgh gSA

; s'kgknr xgs mYQr esa dne j[kuk gS
yksx v klku l e>rs gSa eqgyeka gksukA

nj v l y ft u yksxksa us el yg r u bLyke /keZ dks v iuk; k og fny l s gd i j v k/kkfjr jkt uhfr esa fo'okl ugha j[krs Fks v kSj , d fnu mUgh ds gkFkksa bek e gqbZ 'kghn gq s gqbZ us t ks ckr dgh l h/kh l Pph dgh equkfyQksa pkyckft +ksa l s dke fy ; k v kSj bek e gqbZ ¼v0½ dks v ius l kfFk; ksa ds l kFk 'kghn gksuk i M+k v c l oky ; g gS fd gj fdl h dh gqbZ bl s nksokD; ksa esa dgk t k l drk gS fd gqbZ ¼v0½ ds ft Le dh v kSj ; t hn ds ukik d bjknksa dh A t kfgj esa bl s gqbZ ¼v0½ dh gkj dgs rks dgsa v Yykg dh fuxkg esa ; g gqbZ ¼v0½ dh dke; kch o dkejkuh gSA bl h dh v kSj dfo us Hkh b'kkj k fd ; k gSA

dRy s gqbZ v Ly esa exZ; t hn gS
bLyke ft Unk gksk gS gj djcyk dsckn

dksbZ jkgs gqbZ ¼v0½ ij py l ds ; k ugha yfdu t c rd v t +rs gqbZ dk , s ; kQ+ gS ml s eu q; rk dk l Un's k feyrk jgsxkA

/keZ %&

jkt uhfr ds ckjs esa rks t S k Å i j dgk x; k nks fopkj gks l drs gSa i j Urq /keZ ds ckjs esa nks j k; ugha gks l drhA ml s gj gky esa l Pph ZZ i j ecuh gksuk pkfg, A ; gka dey , d jkLrk gS ft l s ^^fl jkrs eLrdhe** dgrs gSa i j Urq ; gka i j FkksM+k l k i l &o i S k gS fd 'kksjs 'kgknr esa dgha j Å ur u v kus i k, A gt j+ksa l yke ml egku i fo= Q fDr i j ft l us 'kksjs 'kgknr ds cko t wn bUrgkbZ bUdl kj h l s dke fy ; kA dne dne i j eqgkgr dh i S&d'k dh rkfd ckfry dks dksbZ tokt dk v ol j u fey l dsA ; gh og LFkku gS t ksgj 'kghn dks ul hc ugha gksrkA

v kn'kZ %&

rhl jh ckr v kn'kZ; kuh , [ykd s gqbZ ¼v0½ bek e dk i wjk t hou bl dk v ykrjhu uewuk i S k djrk gSA i E; s d

Q fDr l sgLcsejfrc l gnd djusdk tksol Q jl yw v Yykg dh tkr eaik;k tkrk gSogh beke gqlSu ¼vo½ eaHkh ik;k tkrk gSA ;fn egEen ¼vo½ dst hou l s tukcsfcyky dh fel ky iSk dh tkl drh gSrksbeke gqlSu v0 dk thou tukcsfQ"t ¼v½ tukcst kSu dks nfu;k ds l keus iSk djrk gSA v kn'kZ dsfl yfl ys ea ;g ckr ughaHkywuk pkfg;sfd ml dh v l y dl kSVh ;g ughafd ge ykska dl s dSsfeyrsgSa cfYd ;g fd fupysnt Zsdsykska l sgekjk D;k crkZo gSA beke gqlSu ¼vo½ usge Sk xqykekadl sv PNsl sv PNk l gnd fd;kA tukcst kSu l st ks l gnd fd;k ml dh rkjsfel ky feyuk Hkh dfBu gSA

cgknqjh%&

pkSFkh ckr fnyjh gS l gh ekuka eadey ^^[kqnkijLr** gksfnyj gks l drk gSA beke gqlSu ¼vo½ ,d ekuh ea v iusHkkbZ beke gl u ¼vo½ l sHkh v f/kd fnyj Fks; gh fnyjh mUgaesSkusdcZ ke ay xbZ ;g og fnyjh Fkh tkscnze ai gysnSjkh tk pdqh FkhA bl h fnyjh v kSj cgknqjh dks Qkjl h ds dfo usbl i dkj iSk fd;k gSA

u enZv Lr v kac ut nhd sf[kjn ea
fd ck i hys neka i Sak tyn
cysenZv Lr v kav t +:, rgdhd
fd pw[kSe v k;n'k ckfry u xksn

beke gqlSu ¼vo½ fnyjh dsbl eSk i i iws mrjrs gSA

,sfl ;kl rnuka! beke gqlSu ¼vo½ l sf'k{kk ykks ojuk ;g i f'kpeh t y rqgaecgk dj nxkA

,s/kkfeZ ykska gqlSu ¼vo½ dscrk;sgq jkLrs ij pyksA tehu nkokal sdN u gksxkA

bl ckr dks eSa'kk; dh tcku ea ;wiSk dj l drk gw¡

^^gqlSuh 'kku ds l tnsgSa l tnseajh ut jkaea
tehaQl kbZ ka dk uke l tnk gksughal drk**

,se qUuQ!us ,sjkyks +! dHkh l j&o&xjhck gksdj l kpksfd fupysrcdsl srqgkjk l ywd dSk gSA cjkcj okykadsl kFk crkZo l sbl dh tkp u gksxh;krs gqlSu ¼vo½ dk eqgkys ; k djks v kSj ckj ckj djksA

,sfnyj h dsnkoskj kad Hkh rqusv iusuQl l s tax dh v xj ughartks esSkus dkjtkj eafdrus gh dfj'esfn[kkv ksrq l gh ekuka eafnyj gksgh ughal drsA gqlSu bCusv yh ¼vo½ dks l yke gks tks eqfCcj gksdj gd ij Lr FkkA

l yke gqlSu bCusv yh ¼vo½ dks tks fnyj gksdj eqdfl j fetkt FkkA

l yke ml gqlSu ij ft l usbLyke dks nk[kyh [krjksal scpk fy;k v kSj l yke ml gqlSu bCusv yh ¼vo½ dks ft l usv iuh tku nsdj gj /keZ dks eu qt;rk dk l Unsk fn;kA

i`s u0 41 dk 'ks"k----------

f[kl d pqds FkA v c fl QZ tukc eqLye ;Dd%o rugk FkA fQj Hkh v kius fgEer u gkjh tax dhA tukc eqLye dks ds l s fudy tkuk pkgrs Fks exj jkLrk u feyus l s v ki dks ea ajkr Hkj HkVdrs jgsA v kf[kj ,d v kSjr rkSck ds ;gkad ¼+ke QekZ kA filj s rkSck~us ekadsl sNqi dj nfu;k dh ykyp ea ;g ckr bCusft ;kn dks crk nh fd eqLye ml h ds ?kj eagSA rhu gtkj QkSt ;kaus tukc eqLye dks ?kj s fy;kA fQj Hkh v yh&,&eqjr t ¼+ds Hkrht susog tkSgj fn[kk; s fd QkSt s Hkkxus yxhA

xqLls +fd t c fdl h Hkh rjg l s dkcw u ik;k tk l dk rks v ki dks /kks[ks l s ,d [kk+ ikSkx< +s ea fxjk fn;k x;k v kSj fxj¶rkj djds bCusft ;kn ds l keus iSk fd;k x;kA ml us v ki dk l j ru l s tqnk djus dk gqDe fn;kA igys rks v ki dks nk;y beke ;kl /kdy fn;k x;k tc v ki tehu ij r'kjhQ yk;srks v ki ds eqg l s dfye%&,&'kgknr Sa fudykA cknS'kgknr v ki dk l j ru l s tqnk dj fn;k x;k v kSj i Sjkaea jLfl;k¡ cka/kdj v ki ds dqQs dh xyh dqpkaea fQjk;k x;kA bruk gh ugha cfYd v ki dk l j nk;y beke ij yVdk;k x;kA

v ki dh 'kgknr **9** ft ygTt % **60** fg0 dks gqbZA v ki dh 'kgknr ds ckn v ki ds nks cPpksa dks Hkh 'kghn dj fn;k x;kA

djcyk dk 'kgHn

ckcwoh;j³hz deqkj ^^oh: th**

vkfn dky ls gh bl lalkj esa nks fojks/kh 'kfDr;ksa dk laäk"kZ gksrk jgrk gSA ,d vksj lR; vkSj lnxq.kksa ds i{k/kj] lk/kq&lUr] nsoh&iq:"k fr dse egkekuo fl) kalksa dsfy; s laäk"kZ jr jgsrk ksnwljh vksj vlR; ds i<kjh] v iusnq"d`Ùkksa dki'kqcy }kjk fl Ddk tekusokys] fl) kafofgu] nkuo iz`fr dsn"V vksj /kwrZ] fDr jgsA ;fn ,d vksj jke] d".k] xkSre] bZlk] egkosen] gtjr] xkakh vkfn lR; vkSj fl) kar dsi{k/kj Fksrks nwljh vksj jko.k] dla] ;tht] bcyhs ft;+knh vkfn vlR;] Øwjrk i'kqcy vkSj vge~ dsi{k/kj FksA ;g laäk"kZ l'"V ds vkfn lspyrk jgk gSvkSj vUr rd pyrk jgsxkA

vkt ls **14** lkS o"kZ iwoZ vjc ea 'kke dk 'kkld ;thn i'kqcy ds }kjk ckn'kkg cu cBkA og vU;k; vkSj vR;kpkj dk izrhd Fkk vgadkjh vkSj vkMEcjh Fkk] **tksviusfy;slPpk bLykeh izksd gksusdk nvok rks djrk Fkk ijUrq ft ldk vkpj.k mldsnvos dslokZFkk foijhr FkkA**

iSxEcj egksen ¼lo½dsxÚkSjsvHkhvf/kd le; ugha chrk Fkk ek=**50**lky ghgq Fksij Urq;thn] egksen ¼lo½dsfn[kk, gq ekxZlsgV dj py jgk FkkA fQj Hkh reke ykx u pkgrsgq HkhHk; vkSf ncko o'kl Ppseq;yeku ckn'kkg gksusds;thn dsnvos dks ekuspqdsFks^^cSr** dj yh FkkA ijUrqiSxEcj lkgc ds?kjkuslsvHkhrd og cSr ugha ysl dk FkkA ;g vHkko ;thn dks[kVdrk FkkA vr,o og **fdlhHkh idkj mulsa^^cSr** yssdsfy, izkf.jr FkkA**

beke gqlSu ¼vo½'kkfriwoZ viusekxZij py jgsFksA og ;thn dsdk;kZsaegLr{ksi HkhughadjjgsFksijUrqmUgksas;thn ls^^cSr** djusl sbudkj dj fn;kA mlsbLykeh 'kkld dhekU;rknsukvLohdkj fd;kA ;thn ^^cSr** ysusdsfy, dfVc) Fkk vkSj mldh;g dfVc) rkghlaäk"kZ dkdkj.kcukA ;thn usfojks/k ls gu djuk lh[kk ghu Fkk mlusl h[kk Fkk fojks/k dk neu vkSj iwkZneuA mlusviuhnkuoh 'kfDr dk f'kdat k beke gqlSu ds¼vo½fo:) dluk 'kq dj fn;kA

vke turk cgqr MjhgqbZFkh] nchgqbZFkhA pkgrsgq Hkh] mleau ;thn dsizfr fonzksg djusdk lkgl Fkk vkSj u vkRecyA ifjfLFkfr;kj fdruh gh izfrdwy D;ksau gksa iSxEcj ¼lo½ dsfuokl svkSj vk/;kfRed mRrjkf/kdkjh gtjr vyh¼vo½dsykMys beke gqlSu ¼vo½ncusokysu Fks>qdusokysugha FksA mUgsa,glkl Fkk fd mudhulkaesaiSxEcj ¼lo½dk vkSj gtjr vyh¼vo½dk[kw izokfgr gksjgk gSog ltx Fksfd iSxEcj ¼lo½ }kjk tykbZtkusokyh bLyke dh e'kky dksfdlhHkheW; ij cqusughanuk gSog Hkyh Hkkfr le>rsFksfd bl e'kky dksizTofyr j[kusdh mudhviuhftEesnkjhgSA Hkysghe'kky dsfy, muds fy, mudsviusygwdksLug cudj tyukiM+sA

ruko c<+rk x;kA f'kdat k vkSj dlrk x;kA beke gqlSu ¼vo½usLi"V n'kk fn;k fd laäk"kZ vkSj cfynku dsflok vU; dksbZekxZughagSA fQj Hkhlaäk"kZVkyusds fy;s Q`FkZds[kw [kjkcsdkscpkusdsfy;s mUgksas ;thn hy'dj dslaskifr lsdbZcj lEidZl k/kkaa

laskifr usgqlSu ¼vo½dks;thn dk lansk lqk;kfd gqlSu ¼vo½;thn dhcSr dj mlsbLykeh 'kkld dhekU;rknsa mldsdkekaesafdlhizdkj dk Hkh n[ky u nsa turk dh ph[kks&iqdkj dksu lqus tks vijk/k gksjgsgSamUgsagksusnsa Hkh mudh vkSj muds lkFk;ksadh tku cp ldrh gSgqlSu ¼vo½dksviuh tku cpkusdsfy;s;g lc Lohdkj u FkkA mUgksasmlls vkf[kjh ckr dgh]^^v PNk eq>sfgUnkLrku tkusdkjkLrk nsnksA**

^^fojks/k esamldsMVsjgsjkg eksa hfgUnqrku dh**

ijUrq;thnhi{kusbldksHkh u ekukA lhkor% mUgsa'kd k jgh gksh fd gqlSu ¼vo½Hkkjr dhlgk;rk

ydsrryokj dktokc ryokj lsnsusdhfLFkfr esau vk tk;sA D;ksfd dbZ ,sfrgkfld lsaHkkoZesabl dhppkZvkbZ gSfd fgUnqrku ds'kjyokj ^^nhr** cãe.kksalsgqbZ gq.Bl ##0½dse/kq vk§ ?kfu"V lEcU/kFksA esabl le; bl fLFkfr esaughagwafd bl dFku dhiqf"Vkf.kdrkij cy nsl dwy fdu ;fn ,slkjgk Hkhgksrks cfQ vk§ ekuorkdsnqeu ;tkn dks;g lksp ukpkfg, Fkkfd tc gqbZ ##0½us[kq vjc esa;q cy ughacVksj Loa vius ifjokj dscl 'kjyokjksadkslkFk ughaysx;sA vius vgysgje vk§ NksV&NksVscPpksard dkslkFkj[kkrks og Hkkjr dhlkg;rklslsfud lÙk'kZesaD;ksaiM+sA

fQj vLy plt+n§kusdhrks;g gSfd beke gqbZ ##0½;tkn dhjkg esa[kq lsvk, dgkj ml us rksviusfirkdheR;ksjkUr cS;r ysus;kflj nsasds ek= nksfodYi ksesa?kj§ dsbeke gqbZ ##0½dksviuh vkRekj{kkesaryokj dklgkjkysasij foo"kdj fn;k og vfre le; rd Vdjko Vkyusdslnz~Ru esajgsA mUgksasle>k§sdsfy, ;tkn lsiR;{k ppkZdjuh pkghA ;tkn dsvf/kdkfj;ksausvkidksabl dhNwV ughanhvk§ ,sshlsk}kjkftldhfxurhrH gtkj lsydj yk[kkard crk;htkrhgSvkidsNksV&ksVsdkfQys dks?kj§ fy;kj ,sskdkfQys kft lesalksl sde ;kft+knk ykx FksA ml dsQkft+ksausbrukghugha fd gqbZ ##0½ dkiMko ^^Qjkr** dsfdukjsiMusu fn;kcfYd tgk; beke ##0½ds[ks§s[kM+s fd;sx, ml LFkku vk§ ^^Qjkr** dscp lsakdhnhokj [kM+h dj nhvk§ikuh ykusdhjkg iwkZ;kvo:) dj nhA ekS e dkgky ;g Fkk fd]]]]]]

^^ykjrh rirh Fkh rlr roslhj
uHk lsvkx cjlrh FkhA
yiV lsyxrsgok ds>ksds§
lkjh nsg >wylrh FkhAA
unh is igjk cSk Fkk]
ikuh Hkjusij l[rh FkhA
vkt+ky o) lc l;kls Fks]
ty dks tHkk rjlrh FkhAA**

djcykdhe: Hkfe vk§ty Hkjusij ikcUnh Alguu 'kfDr dh;g dfBu ijh{kk FkhA gqbZ ##0½vk§ muds72 lkfFk;ksadhtksgqbZ ##0½dslkFk'kghn gq,A tksgqbZ ##0½dsckj&ckj dgusij Hkh mudk lkFk NksM+dj ughax;sA mVsjg§ gqbZ ##0½dslkFktkusds fy;§ gqbZ ##0½dslkFkghejusdsfy,A brukghugha gqbZ ##0½dslPpsjkLrslsiHkkfor gksdj ;tkn dh lsuk lsog **vf/kdkjh tksbeke gqbZ ##0½dks ?kj§ dj djcyk yk;k Fkkj gqbZ ##0½dh vkj§ vkx;k vk§ mudspj.kksaij viusikz.k U;kSNkoj fd;sA** tgk;ij u ,Sk Fkkj u vkjkeA tgka ij Hkw[kkrksFkhij Hkkstu ughaj§l;kl rksFkhexj ikuh ughaj§tgk;ekSr Fkhvk§fuf'pr ekSr FkhA ijUrqtgk;ij thou dklR; Fkkj/keZFkkj]n;kFkhj]d:.kkFkhvk§Fkk ekgEen ##0½dhtykbZgqbZe'kky dkizdk'k FkkA

unhlsikuhykusdk;oj v§ckl ##0½ dklkglhvfHk;ku HkhvlQy gq,A **6** ekg ds evh+w f'k'kw **^^vyh vlxj**** ##0½dhl;kl nqeuksa usrhj lsc{kkbZA

gqbZ ##0½dk ,d&,d lkFkh cgknjwh ls yM+kgq,k'kghn gq,A gqbZ ##0½Hkhohjrklsy M+s gq, 'kghn gksx,A mudsifo= ygwlsogk;dhfeVVh ifo= gksxbZA vkt Hkh djcykdkd.k&d.k mudh vnE; 'kk§ZxkFkkdkc[kku dj jgkgSA mudh'kgknr dhlk>hnsjgkA

^^ygwlsftudsikou gksxbZfeVVhml LFkku dh**
dcZkdkd.k&d.kdgrkj ifo= cfynku dhdgkuhgSA
xkr jghgSuHkesav crd]vej gqbZ dhokkhAA

djcykdhnqkn ?kVuk vk§ gqbZ ##0½dk cfynku dsoy vjc okykadsfy, ghij.kkdkL=ksa ugha ojun~og leLr lsalkj dksvU;k; dsifr lÙk'kZ djusdhij.kknsk gSA **cfynkuh fdlh Hkh lEiznk; esa tUek gks§ fdlh Hkh nsk dk uksxfjd D;ksau gksijUrq,sk Q fDr lEiznk;] nsk vk§ jk"Vª dh lhekvksalsÅij cgq Åij mB tkrk gSA** cfynku dhoshdksLi'kZdj og lHkhdkcu tkrkgS A lHkhdksvU;k; o vR;kpkj dsfo:) lÙk'kZdjus dksifjr djrkgSA ml dkLekjd ,d ifr izdk'k LrEHkcu dj ekxZlsHkVdusokysgj jkghdkslgh

¼cfd;k i`s un 48 ij]]]]]]]]]]]]]]]]]]]]]½

eðq; lekpkj

eqYd dh gt ;k=k;sa [kkudkgsa ekSyku dYcs tokn dslkFk gS%

ekSyku oyhmYykg lkgc

viukt èqe fNikusds fy;s gekjh vokt +nckjgh gSfj;k.kk rhgqdwer

dk;nsfeYyr ekSyku dYcstokn ud ohh

ftl eqYd dh vkcknhesqYd es ikp ifr'kr gSmUgsaraksreke dkuwuh vkSj izkkl fud in fey jgsgSa ckdh lekt dk ,d cMk fgLl k ftl esaf'k;kj lqUuh vkSj [kkudkghelyd 'kkfey gSamUgsaut j+vUnkt +fd;ktk jgk gS ;sckr esa3 flrEcj dksik dyc esadk;nsekSyku dYcstokn lkgc usf'k;koDQ cksMZdsf[kykQ +py jgh viuhrgjhd ij lgkfQ;kasl sckr phr djrsgq,sdghA mUgksausdgkfd T;+knkrj ,sslykx oDQ cksMZij dkfct +gSftu dselyd esaoDQ dkdkbZerycghughaA mUgksausdgkfd f'k;kvkS lqUuhnksaksaoDQ cksMksaes [kkudkghvkS myekW,&djske dh [kqjkWh ueqkbUnxhgksahpkfg,A ekSykuk usdgkfd fj;k.k rhgdwer viuh cnmuokfu;ksavkS viust èqe dksfNikusdsfy;sfdlhdksHkh viusf[kykQ vkokt +mBkusdhbtktr+ ughansjgh ;ghotg gSfd tc dksbZHkhbnkjk viusgd +dsfy;slMd+ ij mrjrkgSrksfj;k.k rhgqdwer dhrjQ lsykBh pktZvkS nhxj tqYe djdsmu dh vkokt+dksnckusdhdksf'kk dhtkrhgSA ;gk;rd fd mRrj izns'k ljdkj usykBhpktZdsekeysesaoYMZfjdkWMZcukfy;kgSA ekSykukusdgkfd 27 tqykbZdksgtjr xat fLFkr 'kkghefLtn ij geigq veu iz'kkZ dsfy;stkjgsFksysfdu gqdwer usge ykxksaij tqYe dhbUrgk djrsgq,st+jnLrhykBh pktZdhfd vkSjrksavkS cPpksadsHkhlj ksaesaVksa syxk;sx;sA izdkUY;s dsnkSku ekSykukdksl puk feyhfd fiNysfnuksaNkksVsbeke cMs+ij /kjuknsjghefgykvksadhd;+knr djjgh'kcg QkfrekdksllMhykt krsoDr+ fxj¶+kj djfy;kgSA bl ij ekSykukusdgkfd vxj 'kcg QkfrekdhfxjQ¶+kjhdhckr lghgSrksbeke cMk ukfte lkgc fodVkfj;kLVsV ij ,d tylkfd;ktk;xkftlesavkxsdhj.kuhfr rSgksxhA ekSykukdYcstokn usizns'kljdkj ds,d ea=hdkuke fy;scxSj dgkfd mUgksusxqjkr esaiVsy lekt ij gqsykBhpktZdhrks cMs+ghdBks 'kCnksaesafuank dhgSysfdu fj;k.kr esagksjgsykBhpktZdhrks ckjsesaHkhtokgSm;sx;slk.kr esaigkisjgsykBhtk;ZijphupikD; nasvkS ml ij iq;ly dhcsjgeh bUgsaut j+ ughavkrhA ekSykukusdgkfd eqQ¶Qj uxj dkQlkn lcdsl keusgSftl usxqtjkr dsQlkn dks Hkh ihNsdj fn;kA ekSykukusdgkfd gekjsdkSeh ukSstokuksadksnQk+151 dsrgr fxj¶+kj fd;kx;kvkS ckn esamudsmij dRy] MdSrh vkS u tkusfdu&fdu nQkvksard rdjhcu 30&30 eqdnesyxkfn;sx;svkS mUgacsgehlstsy esa Bkw fn;kx;kA ekSykukdYcstokn usegyk;e flag lsvihy dhfd og 2017 bZ dspqukO esaFkksMk+Hkhl Eekutud ifj.kke pkgrsgSrksoksviuscsVsvkS ea=;ksaij yxke yxk;sA tksviusin dhvdM+esavR;kpkj djjgsgSa

dk;nsfeYyr ekSyku dYcstokn dslkFkZ esa'kkSkgr e'kk;[k ekSykuk oyhmYykg lkgc] lTtkng u'khu lQhij mUuko] usdgkfd ge vkS gekjslkFkijwsfgUnqLrku dhreke [kkudkgsatqYe dsf[kykQ +vkokt +mBkusesa ekSykukdYcstokn dkijwhrjg lkFkZ djrsgSavkS djrsjgsaxsA mUgksusdgkfd tYnghy[kuÅ esa,d cMk tylkfd;ktk;xkA ftlesayxHkx <kbZgtkj f'k;kvkS lqUuhvkfye 'kjhd gksaxsA bl esafsij f'k;kvfyekasds lkFk&lkFkvgyslqUur vkfyekaesatukc ekSykuk,glku fe;kcdkbZlS;n glu fe;kcdkbZ lQhijw] vkS lS;n vgenqYykg fe;k,oav[r+j fe;kfutkeh dkuiwjHkhekStwnFksA vkS lHkhusekSykukdYcstokn dhrgjhd+dh fgek;r djrsgq,smUgsaviukijwklg;ksx nsusdh;dhu ngkuhdjkbZA

f'k;ko lqYrkuhoDQ+ckWMZdh lh0ch0vkbZ0 tk¡p djk;s ljdkj

dk;nsfeYyr eksgfEeknuk dYcst okn udoh

` 11 flrEcj dks et fyl smyek, fgUn dst ujy flØsVªh bekest eqgEen dk;nsfeYyr eksgfEeknuk dYcst okn udoh usviust kjhc;ku esadgk fd tfcye] tkfye dkennxkj vkSj mldk dk;Zl jkgusokysl c ,d ghnk;jsea vkrsgSa ;st kfye dhbUrgk gSfd gekjsuch okuk dks Qt hZeqdnnekaesa fxj¶rkj dj dsvc mu ij xSlsVj yxk fn;k x;k gS] vkSj gekjh dkSe dhefgykvksadksfxj¶rkj djusdh lkft 'k dhtk jgh gSA eksgfEeknuk usdgk fd lekt okn hljdkj esa f'k;kadsl kFk ,sk tkfyekuk crkZo fd;k tk jgk gSt Sk crkZo bl ls igysfdlh ljdkj esa ughafd;k x;kA nj vly fiNysi kfy;ZkesV ,yD'ku esafeyh dkjh ghkj lseqk;e flag lsljdkj ckSjk x;h gSbl fy;sdHkh f'k;kaij tqYe fd;k tk jgk gSvkSj dHkh fgUnw vkSj eqlyekuksadhgd+ryQh dh tk jgh gSA bl ckj u mUgsafgUnqvksadk okSV feyxk vkSj u eqlyekuu mudk lkFk fn;k djrsA eksgfEeknuk usdgk fd turk cs odQ+ ugha gks hoks lc tkurh gSA lekt okn hljdkj dhnksgjh ikfyl h; ksadk tokc og ,yD'ku esansxhA turk gj tqYe dk tokc flQZ ,d fnu ns hgSvkSj og ,d fnu vc njwu ughagSA eksgfEeknuk usdgk fd ljdkj dhbUgh nksgjh ikfYlh;ks vkSj yxkrkj dkSe ij fd;st kjgs tqYe dsf[kykQ 13 flrEcj dksnjxkg gt jr vCckl esavokeh tyl k j[kk x;k gSA rkfd vkxsdhj.kuhfr r; dhtk l dsA eksgfEeknuk usdgk fd ge gesa'kk el vyksadks cckr pht dstfj;s gy djuk pkgrsgSA rkfd gekjh dkSe dks de lsde uqdlku dk lkeuk djuk iM+s exj vQ+lkSl ;sljdkj ckr pht ij r;kj ugha gSA tku cw>dj ge ij vR;kpkj fd;k tk jgk gSA tqyvq rq fonkv lsydj 27 tqykbZ rd gj txg gekjsiq:veu izn'kZu ij ykBhpktZ dhx;hA eksgfEeknuk usdgk fd f'k;ko lqYrkuhoDQ+ckWMZ dh lh0ch0 vkbZ0 tk¡p gksk cgqq t :jh gSA

¼ckdh i`"B u0 46 dk]]]]]]]]]]]½

fn'kk dk ckSk djkrk gSA

djcykds'kgln beke gqlS u ¼v0½ dk cfynku Hkh ,sk gh ijpd gSt ks jk"Vª vkSj tkfr dhlhekvksa dks ykaldj ;qx&;qx rd ij.kk nsk jgk gSA

pedrk tc rd pUnkuHkeg vkSj cgrk xakdk ikuh gSA
;qx&;qx rd ifjr djusdkS egku ;g dqckZuh gSA

●●●

^^bUlku dks cskj rks gksysnsnks gj dkSe iqdkjsxh gekjsgSagqlS**
^^tks'k** efyg cknh

eSa vUr esacMk+ fou; dsl kFk ;g fuosnu djuk pkgrk gwfd eqsdkbZ ,sh ckr dgusesal dkp gS tksfdlh HkkbZ dsfy;sd"Vdkjh ;k vfiz; gkS ij Urqnks ckrsa ftudk ,srgkfl d vuqHkko gksdslQkbZgkstk;s rksfu'p; ghjk"Vªh; ,drk dks cgqq cy feysvkSj og ;g g&

1& D;k ^^nhr ckie.k** beke gqlS u ¼v0½ dsl kFk djcyk esayM+Fks vkSj dke vk, Fks vkSj **ckie.kksaesa ^^gqlSuh** oxZ dkSscuk ftldsfo"k; esa ^^uTe** lkfgc usdgk gS%&**

^^fdrus ckie.k dks ^^gqlSuh cuk fn;kA**

2&D;k gt jr beke gqlS u ¼v0½ dh /keZ Ruhtuke 'kgjckuksadsek;dsokyksadk Hkkjr dsfdlh jkt &ifjokj lsdkbZ flyflykFkk vkSj bl fo"k; esaejsLoxhZ fe= tukc txnh'k izlkn eksFkqj ¼^^ul he** egknkckn½ usemql scrk;k Fkk fd egkjkt t;ijwd s'kt js½okkoyh½ esabl rjg dk dkbZmYys[k gSA ;nk&dnk bl rjg dhckrsa i=&if=dkvksaesa Hkh Nik djrh gSA vko';drk xEHkhjrk iwoZd b/kj /;ku nsusdh gSA exj lQkbZ rksgksh ghpkfg;sA